ग्रामीण विकास
को समर्पित

कुरुक्षेत्र

वार्षिक मूल्य : 70 रुपये

वर्ष 52 अंक : 8 | जून 2006 | मूल्य : 7 रुपये

जैव-विविधता संरक्षण

बढ़ती चुनौती पर्यावरण संरक्षण

पृथ्वी के अस्तित्व पर मंडराता संकट

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की स्थिति सरकारी प्रयास

जल संकट का निदान वर्षा जल संचयन में

खतरे में है गंगा का अस्तित्व

भारत में ऊर्जा के स्रोत और परमाणु ऊर्जा समझौता

जैव-ईंधन : ऊर्जा का बेहतर विकल्प

पेट्रोलियम ऊर्जा का विकल्प : बायो डीजल

समता और सामाजिक न्याय के अग्रदूत

"मैं एक ऐसा आदर्श समाज चाहता हूं जो
स्वतंत्रता, समता और बंधुता पर आधारित हो।"
-डॉ. भीमराव अम्बेडकर

कृतज्ञ राष्ट्र भारत रत्न बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर
का उनकी जयंती पर श्रद्धापूर्वक
स्मरण करता है।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

davp 2006/25

KH-06/06/02

कुरुक्षेत्र

संपादक
स्नेह राय

संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014
तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन. सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक
जगदीश प्रसाद
दूरभाष : 26105590,
फैक्स : 26175516

आवरण
संजीव सिंह

सज्जा
रजनी दवे

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 52 ● अंक : 8 ● पृष्ठ : 48

ज्येष्ठ–आषाढ़ 1928

जून 2006

इस अंक में

जैव-विविधता संरक्षण	एस.एस. सैनी	3
बढ़ती चुनौती पर्यावरण संरक्षण	राम अनुज मिश्र	6
स्वच्छ पर्यावरण में स्वस्थ जीवन का विकास	राजेन्द्र सिंह बिष्ट	8
पृथ्वी के अस्तित्व पर मंडराता संकट	राकेश शर्मा	9
पर्यावरण संरक्षण प्रकृति ही एकमात्र विकल्प	करुण बहादुर सिंह	13
पर्यावरण का आवरण	भीष्मदेव महतो	15
ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की स्थिति सरकारी प्रयास	अखिलेश आर्येन्दु	17
जल संकट का निदान वर्षा जल संचयन में	एस.आर.कन्नोजे	20
पानी और समाज के सरोकार	अभिषेक शर्मा	22
धतुरिया ग्राम झाबुआ के कायापलट में राजीव गांधी जलग्रहण मिशन की भूमिका	सुनील कुमार शर्मा और महेश कुमार परदेसी	23
खतरे में है गंगा का अस्तित्व	मनीष कुमार सिन्हा	24
बिन पानी सब सून	श्याम मनोहर व्यास	25
लोक-संस्कारों में जल की भूमिका	श्यामसुंदर दुबे	27
भारत में ऊर्जा के स्रोत और परमाणु ऊर्जा समझौता	सूर्य भान सिंह	29
जैव-ईंधन : ऊर्जा का बेहतर विकल्प	श्याम सुन्दर सिंह चौहान और दीपा रावत	32
भारत में सौर ऊर्जा	मधुज्योत्सना और जगनारायण	37
पेट्रोलियम ऊर्जा का विकल्प : बायो डीजल	वैभव पाण्डेय	42
ऊर्जा स्वावलंबन की ओर	दिनेश मणि	45
वैकल्पिक ईंधन : जैव डीजल	कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी	47
चमक उठा भावगढ़ का भाग्य	किशन रतनानी	48

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

मत - सम्मत

'कुरुक्षेत्र' मार्च, 2006 का अंक अक्षरशः पढ़ा। यह पत्रिका वास्तव में यथानाम तथागुण ही है। मै भारतीय सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी में समर्पित छात्र हूं। इस पत्रिका द्वारा मुझे आईसीएस के निबंध प्रश्न पत्र की तैयारी का उच्चतम स्रोत मिला है। जो धाराप्रवाह आइएएस को चाहिए, वह इस पत्रिका में है। आज प्रतियोगिता के इस गलाकाट दौर में अनेक पत्रिकाएं कुकुरमुत्तों की तरह उग आई है। परंतु 'कुरुक्षेत्र' एक अपवाद स्वरूप सर्वश्रेष्ठ समसामयिक पत्रिका बनकर उभर रही है। इसने मेरी लेखन क्षमता में नये आयाम दिए हैं। कोटिशः साधुवाद। इसके लेख 'गागर में सागर' होते हैं। प्रांजल धर का लेख 'महिलाएं: नई दिशा की ओर' सर्वश्रेष्ठ लगा। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है हमेशा नवीन लेख एक ही विषय मंथन करते रहेंगे।

मनीद्र सिंह राठौर, जोधपुर

मार्च, 2006 का कुरुक्षेत्र का अंक पढ़ा। बड़ा रोचक और ज्ञानवर्धक लगा। यह जानकर खुशी हुई कि महिला क्या से क्या कर रही है। कितनी आगे बढ़ रही है। वहीं आज भी मानव के संकीर्णता के कारण कन्याभ्रूण हत्या व बलात्कार की जानकारी ने एक प्रकार से सोचने पर विवश कर दिया कि जिस धरती पर नारी को देवी, सर्वोपरि माना जाता है, जिसके कारण हमारा अस्तित्व है उसका उसकी संतान से ही दुर्गति कितनी घृणित कृत्य लगता है। जहां महिला कदम से कदम मिलाकर चलना चाहती है वहीं कुछ संकीर्ण मानसिक प्रवृत्ति वालों के कारण सारी पुरुष प्रजाति कलंक ढोती है। इसक निदान अत्यंत आवश्यक है।

सन्नी कुमार झा, बिहार

दशकों पहले बजट किसी सरकार का भविष्य निर्धारित करता था, लेकिन, वर्तमान बजट में ऐसा कुछ नहीं रह गया है, क्योंकि, बजट में आये दिन संशोधन होते रहते है। रोजमर्रा के उपयोग में आने वाली वस्तुओं के भाव में उतार–चढ़ाव होते रहते हैं। बजट अब सिर्फ देश का कराधान ढांचा रह गया है जो नीतिगत घोषणाओं को जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है। सिर्फ, बजट से जनता का दिल जीतने और सत्ता सुख पाने की आशा रखना नादानी होगी। क्योंकि बजट के अलावा देश में अन्य पहलू भी हैं जिन पर राजनीतिक रोटियां सेकी जाती हैं। और वोट बैंक में इजाफा किया जाता है।

वैसे भारतीय बजट के मुख्यतः चार पहलू हैः 1. अर्थव्यवस्था की कुल स्थिति; 2. नीतिगत घोषणाएं; 3. वित्तीय प्रबंधन और 4. व्यय जैसा कि वरिष्ठ लेखक पुष्पेश पंतजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि कारों की जगह ट्रैक्टरों के दाम घटाने की जरूरत है। हर घर में सेल फोन के जगह जल पहुंचाने की जरूरत है। मेरी समझ से वर्तमान बजट की नीतिगत घोषणाओं में कमियां रह गई हैं जो छोटे तबको के लिए फायदेमंद नहीं हैं वहीं रेल बजट चहुंमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। कुल मिलाकर देखा जाए तो वर्तमान बजट सरकार का अपना भविष्य सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हो रहा है साथ में शेयर बाजार की गर्जनाएं भी सरकार का बखूबी साथ दे रही हैं।

सौरभ कुमार, बिहार

ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका यह एक ऐसी पत्रिका है जो ज्ञानवर्द्धक होने के साथ–साथ देश के विकास में सहयोग प्रदान करने वाली है। इसमें प्रकाशित लेख लोगों को मानव जीवन की वास्तविकता को दर्शाता है। कुरुक्षेत्र पत्रिका वास्तव में एक ऐसा लड़ाई का मैदान है जिसमें हम देश के आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं जैसे बढ़ती, आबादी, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, जल–संकट आदि के विरूद्ध घमासान युद्ध कर रहे हैं आशा है यह उन सबसे से निजात दिलाने में काफी सहयोग प्रदान करेगी।

अंजली जयसवाल, दिल्ली

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका कुरुक्षेत्र सचमुच चहुंमुखी विकास की पत्रिका है। बजट पर केंद्रित संतुष्टदायक अप्रैल का अंक पढ़ा। 'चहुंमुखी विकास की दिशा में अग्रसर' नामक लेख में बजट से संपूर्ण समाज के व्यवहारिक रूप से संतुलित और सामंजस्य को आधार में रखकर समझाने की कोशिश की गयी है। सचमुच यह पत्रिका काबिले तारीफ है, जो समाज में चेतना व उत्साह जागृत पैदा करने के साथ–साथ भारत को विकसित राष्ट्र बनाने में राष्ट्रपति ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का 'भारत विजन 2020' के संकल्प को पूरा करने में उत्साहवर्धक सहयोग कर रहा है।

भारत के चहुंमुखी विकास में सहयोग के काबिल यह बजट क्या नागरिकों की समस्या और विकास को तेजी से बदलेगा? क्या बजट पर कुछ भ्रष्ट नौकरशाही कर्मचारियों की टेढ़ी नजर से विकास में बाधा नहीं पड़ेगी? इन सबके समाधान के लिए उत्साहवर्धक और महत्वपूर्ण संग्रहणीय यह पत्रिका विकास में सहयोग कर रही है।

अभिषेक रंजन सिंह, उत्तर प्रदेश

पंचायत और ग्रामीण विकास की नई आशाओं को समेटे "कुरुक्षेत्र" का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में अन्य लेखों के अलावा ग्रामीण विकास को बराबरी पर लाने की कोशिश 'ग्रामीण विकास की नई आस और 'गांवों में विकास की ब्यार' शीर्षक से लेख विशेष पसंद आये। अंक से जानकारी मिली कि भारत सरकार का पंचायत एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय ग्रामीण विकास के लिए आबंटित धन सीधे पंचायतों को दान में देने पर विचार कर रहा है जो बेहद सराहनीय है। हाल ही में भारत सरकार ने 12वें वित्त आयोग की राशि जनसंख्या और क्षेत्रफल के हिसाब से सीधे पंचायतों के खातों में जमा करने का निर्णय लिया है। इसका सभी प्रधानों (सरपंचों) ने बेहद स्वागत किया है। इस निर्णय से अब सभी पंचायतों को ग्रामीण विकास के लिए अपनी मूलभूत सुविधाओं के विस्तार में मदद मिल रही है। उक्त निर्णय से अब 12वें वित्त आयोग की राशि का वितरण पक्षपातपूर्वक किये जाने के आरोपों पर विराम लग गया है, साथ ही सरपंचों को राशि प्राप्त करने के लिए अनावश्यक दौड़–धूप और कमीशनखोरी से भी मुक्ति मिल गई है। इस निर्णय से ऐसे सरपंचों को बेहद राहत मिली है जो जिला तथा जनपद मुख्यालयों से दूरी पर होने के कारण बार–बार जनपद तथा जिला मुख्यालयों के चक्कर नहीं काट सकते। इस निर्णय के लिए शासन को कोटिशः धन्यवाद।

हुलास राम कटरे, मध्य प्रदेश

'कुरुक्षेत्र' अप्रैल, 2006 का अंक केंद्रीय बजट 2006–07 पर केंद्रित बेहद रोचक, सारगर्भित लगा। लेखको ने विभिन्न आयामों की प्रस्तुति करके बजट को पूरी तरह खोलकर आम भाषा में समझाने की कोशिश की है। जिसमें पूरी तरह सफलता मिली है। अंनत मित्तल ने अपने आलेख में, विद्वान लेखक आदरणीय पुष्पेश पंतजी ने देश काल और लोगों की सोच को सामने रखकर सबकुछ कहा है। सी.एम. चौधरी ने केंद्रीय बजट का समुचित विश्लेषण पेश किया है। ब्रजेश कुमार ने रेल बजट 2006–07 में ग्राहक सेवा के विस्तार पर प्रकाश 'बर्ड फ्लू' पर विस्तार से सामयिक जानकारी देने के लिए शेखर श्रीवास्तवजी को साधुवाद।

रामनारायण 'रमेश', बिहार

जैव-विविधता संरक्षण

एस.एस. सैनी

पृथ्वी पर मौजूद जीव जंतुओं तथा वनस्पतियों की लाखों–करोड़ों प्रजातियों, नदियों, वनों, झीलों, समुद्री क्षेत्र सभी को मिलाकर, 'जैव–विविधता' कहा जाता है। वस्तुतः पृथ्वी पर ये कितनी संख्या में मौजूद हैं, निश्चित तौर पर इनकी सही संख्या बताना आज भी संभव नहीं है। हालांकि 1992 में प्रथम बार ब्राजील की राजधानी रियो डी जनेरो में हुए पृथ्वी शिखर सम्मेलन में शामिल देशों में जैव–विविधता तथा पर्यावरण संरक्षण का संकल्प लिया गया था। आकलन की योजना में तब एक हजार से अधिक वैज्ञानिकों को लगाया गया था। यह प्रयास रंग लाये और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी रिपोर्ट के अनुसार पृथ्वी पर जल–थल क्षेत्रों में करीब 1.40 करोड़ तक सूक्ष्म जीवों, वनस्पतियों/पेड़–पौधों व वन्य जीवों की प्रजातियां हैं। रिपोर्ट के अनुसार इनमें से ज्ञात प्रजातियां 17.5 लाख से कुछ ही ज्यादा हैं। हालांकि अभियान के तहत हुए आकलन में 20 हजार नये जीव–जंतुओं का पता लगने की संभावना भी सितंबर 2005 तक व्यक्त की गई है। इसको लेकर वैज्ञानिक काफी उत्साहित हैं।

जैव–विविधता क्या है ? – जैव–विविधता से अभिप्राय जीवन की उन विविध रचनाओं से हैं, जिन्हें हम अपने चारों तरफ देखते हैं अर्थात जैव–विविधता का अर्थ सभी स्रोतों से तथा परिस्थितिकीय जटिलताओं, जीव– जंतुओं, वनस्पतियों की विभिन्न प्रजातियों और परि प्रणाली की भी परस्पर जीवित रचनाओं में विभिन्नता से है। जैविक स्रोतों में भी मुख्यतः पौधे, जानवर और सूक्ष्म रचनायें, विभिन्न भाग उनके उत्पत्ति तत्व और जैव–उत्पादन भी इसमें शामिल हैं।

जैव–विविधता विशेषज्ञ मानते हैं कि भारत की भौगोलिक विविधता की बर्फ से ढकी चोटियां, हिमनद, ऊँचे पहाड़, हजारों किस्म के पेड़–पौधे, वनस्पतियां, उनमें जीवन व संरक्षण पाने वाले जीव–जंतु , पुष्प, औषधियां राजस्थान के रेगिस्तान, केरल व उत्तर–पूर्व के सदाबहार वन, सैकड़ों, पर्वत चोटियाँ, नदियां, प्राकृतिक झीलें, समुद्र उनमें पलते जीव–जंतु, करोड़ों सूक्ष्म जीव, पठारी क्षेत्र, वेटलैंड अर्थात् इस भौगोलिक विविधता में हमारी जैव–विविधता के साक्षात दर्शन होते हैं।

लगभग डेढ़ दशक पूर्व कराये गये सर्वेक्षण के मुताबिक भारतीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय इन क्षेत्रों में जीव–जंतुओं की करीब 75 हजार, पेड़–पौधों की 45 हजार, स्तनपायी जीवों की 340, पक्षियों की 1200 सरीसृपों की 420, उभयचरों की 140, प्रजातियां, लगभग 4000 समुद्री सीप (घोंघे) व अन्य सूक्ष्म जीव (ज्ञात) लगभग 50 हजार कीड़े–मकोड़ों की प्रजातियां मानता है। इनके अलावा वनस्पतिक जगत में वन पर्यावरण मंत्रालय 15 हजार पुष्पीय पौधे, पांच हजार समुद्री वनस्पतियां (शैवाल आदि) 20 हजार फफूंद (फंगस), 16 हजार लाइकेन, 27 हजार ब्रायोफाईट्स और लगभग 600 टेरिडोफाईट्स प्रजातियां हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि विकास कार्यों के कारण गति जितनी तेज है उससे सैकड़ों ज्ञात तथा लाखों अज्ञात प्रजातियों के विनाश का खतरा काफी पहले पैदा हो चुका है। वैज्ञानिक रिपोर्ट कहती है कि सन् 1600 से अब तक के चार सौ साल में जानवरों तथा वनस्पतियों की 654 प्रजातियां नष्ट भी हो चुकी हैं। अभी भी जिन पर खतरा मंडराया हुआ है उनमें लगभग 1200 जानवर और 3632 प्रजातियां वनस्पतियों की हैं। पर्यावरण एवं जैव–विविधता विज्ञानी साफ तौर पर कहते हैं कि मानव आबादी बढ़ने की रफ्तार के साथ–साथ खेती, आवास, सड़कों, कारखानों का क्षेत्र बढ़ रहा है, वन क्षेत्र एवं जानवरों के अधिवास क्षेत्र घट रहे हैं, इससे यह खतरा और बढ़ा है। जैव–विविधता वैज्ञानिक मानते हैं कि बड़े–बड़े बांध भी जैव–विविधता विनाश में अहम भूमिका निभा रहे हैं। कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों के खेती में प्रयोग ने भी इस विनाशचक्र को गति प्रदान की है।

धरती के अलावा समुद्री जीव खासकर सूक्ष्म जीव भी विविधता का 90 प्रतिशत माने जा रहे हैं। समुद्री पर्यावरण वैज्ञानिकों के एक दल ने समुद्री जैव–विविधता पर व्यापक शोध कार्य किया है। हाल ही में 'सेसंस ऑफ मैरीन लाईफ' नाम शोध परियोजना में दुनिया के अनेक देशों जैसे नीदरलैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन, भारत, जापान, यू.एस.ए., ब्रिटेन आदि 70 देशों ने सहयोग दिया। इस प्रोजेक्ट के कोआर्डिनेटर नीदरलैंड के सूक्ष्मजीव विज्ञान लुकास स्टॉल के अनुसार भी महासागरों में जैव–विविधता का 90 प्रतिशत हिस्सा सूक्ष्म जीव ही है।

वैज्ञानिकों ने माना है कि विभिन्न वनस्पतियों एवं जीव प्रजातियों के 'स्थान विनाश' के बाद जैव–विविधता पर दूसरा बड़ा संकट बाहरी प्रजातियों के विस्तार का ही है। भारत में साठ के दशक में पी.एल. 480 नामक गेहूं के आयात के दौरान अमेरिका से आयी जंगली घास पार्थेनियम इसका ज्वलंत उदाहरण है। आज यह घास देश के हर गांव, शहर, बाग–बगीचों, खेत–खलिहानों में अपना विस्तार कर चुकी हैं और दशकों के अनुसंधान के बाद भारतीय कृषि विज्ञानी अब कहीं जाकर इसको नष्ट करने के लिये जैविक उपाय खोज सके हैं।

वैज्ञानिक मानते हैं कि बाहर की प्रजातियां बाजार, पर्यटन और जैविक नियंत्रण कार्यक्रमों की वजह से विस्तार पा रही हैं। कई दशक पहले अमेरिका के रेगिस्तान भागों में उगने वाले पीयर कैक्टस का आयात आस्ट्रेलिया में जंगली जानवरों से पालतू जानवरों की रक्षार्थ, उनके बाड़े बनाने के लिये किया था। आज यही कैक्टस वहां के डेढ़ करोड़ एकड़ से ज्यादा क्षेत्र में फैल चुका है और इसके स्थानीय वनस्पतियों को समाप्त किया है। प्राकृतिक क्षेत्रों का विनाश, पारिस्थितिकी तंत्र का अवैज्ञानिक दोहन एवं खनन के कारण बाहरी प्रजातियां नए स्थानों पर तेजी से पनपने

लगती हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि जैव–विविधता को नष्ट कर हम अपने ही विनाश को आमंत्रित कर चुके हैं। उनका कहना है कि जलवायु बदलाव ही नहीं, उल्कापात एवं जैव विकास की प्रतिस्पर्धा में जितने जीव और वनस्पतियां नष्ट हो रहे हैं, उससे 50 से 100 गुना जैव–विविधता नष्ट होने के लिये मानव गतिविधियां जिम्मेदार हैं। विनाश की इस प्रक्रिया को नियंत्रित करने के लिये शुरू हुए प्रयास सराहनीय हैं परंतु उनमें तेजी लाने की जरूरत है।

ग्लोबल वार्मिंग से जैव–विविधता पर खतरा – कार्बन डाई ऑक्साईड व मीथेन गैसों के लगातार बढ़ते उत्सर्जन से सारा वातावरण ही गरमा गया है। इससे न केवल मौसमी बदलाव बल्कि जलवायुयिक बदलाव भी आए हैं। इसके कृषि, वनस्पति, वनों पर असर परिलक्षित है। विकसित देशों–यथा अमेरिका, जापान में तूफान श्रृंखला (हरीकेन, रीटा, वीटा, विल्मोकिस) यूरोपीय देशों में भीषण गर्मी–लू के थपेड़े, समुद्रीय जलस्तर में वृद्धि, उत्तरी एवं दक्षिणी ध्रुवों में बर्फ का भारी मात्रा में पिघलना, हिमनदों का खत्म होना, ये सब जलवायु परिवर्तन के ही दुष्परिणाम हैं। कहीं सूखा पड़ना, कही अतिवृष्टि, ये सब ग्लोबल वार्मिंग की ही देन है। इनसे वनस्पतियों पर तथा वन्य जीवों पर खतरा बढ़ा है, नदियां व झीलें सूख रही हैं। रेगिस्तान फैल रहा है।

भारत में जैव–विविधता धरोहर – दुनिया में सिर्फ दो फीसदी हिस्सा जैव–विविधता है और इसमें भी कुल वैश्विक जैव–विविधता का 8 प्रतिशत हिस्सा भारत में है। इस दृष्टि से भारत की गिनती प्राकृतिक संपदा वाले दर्जन भर प्रमुख देशों में होती है। भारत का जैव–विविधता के लिहाज से वृहत्तर हिमालय, हिमालय, रेगिस्तान, पश्चिमी घाट, अर्द्धशुष्क क्षेत्र (प्रायद्वीप क्षेत्र), दक्षिणी पठार (प्रायद्विपीय भाग), गंगा मैदान, समुद्रतटीय क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी क्षेत्र तथा समुद्रीय द्वीप समूह, इन दस क्षेत्रों में वन एवं पर्यावरणीय मंत्रालय ने बांटा है। भारतीय जैव–विविधता विशेषज्ञों के मुताबिक इन जैव–विविधता क्षेत्रों में अधिसंख्य वन्य जीव एवं वनस्पतियां, भौगोलिक क्षेत्र, परिस्थितिकी तंत्र आदि शामिल हैं। उदाहरण के रूप में हिमालय क्षेत्र एवं गंगा–यमुना बेसिन एक–दूसरे से मिले हुए हैं लेकिन जैव–विविधता के लिहाज से इनमें काफी भिन्नता है।

प्रांतों के हिसाब से भारत में जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, सिक्किम, असम, नागालैंड, मिजोरम, त्रिपुरा, मणिपुर आदि हिमालयी राज्यों को 'ए' श्रेणी, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़, झारखंड आदि को 'बी' श्रेणी, 'सी' श्रेणी में गुजरात, पांडिचेरी, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु, केरल और समुद्री द्वीप निकोबार–लक्षद्वीप को 'डी' श्रेणी में रखा जा सकता है।

भारत में जैव–विविधता का प्रमुख निर्धारक कारक–जलवायु की उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम में विभिन्नता भी है। इसी से जलवायु अनुकूल जीव–जंतु एवं वनस्पतियां भी पैदा होती हैं और संरक्षण पाती हैं। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के तहत जारी सूची के मुताबिक भी जैव सम्पदा के लिहाज से ब्राजील विश्व में प्रथम स्थान रखता है। जबकि इंडोनेशिया जैसा छोटा देश दूसरे, कोलंबिया तीसरे और ऑस्ट्रेलिया चौथे स्थान पर है।

जैव–विविधता संरक्षण प्रयासों की शुरूआत – पिछले कुछ वर्षों से जैव सम्पदा के संरक्षण के लिये सरकार व गैर–सरकारी संगठन सक्रिय हुए हैं। यह स्थिति तब उत्पन्न हुई और हमारी तंद्रा तभी टूटी, जब हल्दी, बासमती चावल, नीम, करेला जैसे औषधीय गुणों से भरपूर भारतीय उत्पादों को अमेरिका आदि पश्चिमी देशों ने पेटेंट हासिल कर लिये थे

विश्व आयुर्वेद परिषद का भी कहना है कि भारत में प्राकृतिक वनस्पतियों व जड़ी–बूटियों का इस्तेमाल आयुर्वेदिक दवाओं के अलावा सौंदर्य प्रसाधनों में होता आया है। सम्पूर्ण आयुर्वेद चिकित्सा इन्हीं पर आधारित है। लेकिन इतना सब होने पर हम अपने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के प्रति उदासीन ही बने रहे। इसका काफी नुकसान हुआ है। गैर–सरकारी संगठनों के हल्ला मचाने पर ही जैव–विविधता संरक्षण और बौद्धिक सम्पदा कानून अस्तित्व में आ गये हैं।

जैव–विविधता संरक्षण कानून – भारत में यूं तो जैव–विविधता संरक्षण एवं प्राकृतिक सम्पदा संरक्षण के लिये वन संरक्षण कानून ही चला आ रहा था लेकिन विश्व व्यापार संगठन के बढ़ते प्रभावों के चलते नये कानूनों की जरूरत समझी गई। क्योंकि पांच साल पहले तक पुराने कानून कारगर नहीं रह गये थे। इसी क्रम में केन्द्र सरकार ने 2004 में 'बौद्धिक सम्पदा अधिकार सुधार अधिनियम एवं उनके लोकोपचार में ज्ञान 'को' सहेज कर रखा है। इसी आधार पर स्थानीय लोगों की भी इस कानून के तहत भागीदारी सुनिश्चित करने की व्यवस्था की गई है।

अधिनियम में विलुप्त हो चुकी वनस्पति प्रजातियों के पुनर्जनन व उत्पादन पर खास ध्यान देकर इसमें स्थानीय ग्रामीणों की भागीदारी से इनकी नर्सरियों के जरिये उत्पादन बढ़ाने पर खासा जोर दिया गया है। इसके अलावा पारंपरिक जैव ज्ञान को अनुच्छेद 36(4) तथा 11 में बौद्धिक सम्पदा घोषित किया गया है। साथ ही इसके संरक्षण पर भी बल है। अधिनियम के अनुच्छेद 18(4) में इस मद से प्राप्त आय का केन्द्र सरकार तथा इसके संरक्षण में संलग्न व्यक्ति/संस्था में समान रूप से बंटवारे की व्यवस्था की गई है। जबकि अनुच्छेद 6 में जैव–विविधता क्षेत्र में शोध या उपयोग की बाबत विदेशियों के लिये अनिवार्य अनुमति का प्रावधान है।

अधिनियम के 21वें अनुच्छेद में एक जैव–विविधता कोष भी बनाने का प्रावधान किया गया है। यह इसलिये किया गया ताकि इस धन का सदुपयोग भावी संरक्षण कार्यक्रमों में हो सके। इसी प्रावधान के एक उप–नियम में इस धन का उपयोग जड़ी–बूटियों का डिजीटल लाइब्रेरी में भी सुरक्षित किये जाने की प्रणाली को जैव–विविधता संरक्षण की दिशा में एक सार्थक प्रयास माना गया है।

देश में करीब 80 हजार वनस्पतियां व जड़ी–बूटियों का विभिन्न रोगों के उपचार हेतु दवा निर्माण में होता रहा है। अब इनमें हजारों वनस्पतियां विलुप्त हो चुकी हैं। उधर कुछ जैव विशेषज्ञों का कहना है कि अभी दुनिया भर में 25 हजार औषधीय पौधे व उनके फार्मूले ही सूचीबद्ध हैं, ज्यादा नहीं लेकिन और शीघ्र ही 50 हजार और ऐसी वनस्पतियों/औषधियों के ज्ञान संबंधी फार्मूले सूचीबद्ध करने की तैयारी है।

उल्लेखनीय है कि 1 अप्रैल 2001 को विश्व व्यापार संगठन अधिनियम के प्रभावी होने के बाद से नई तरह की परिस्थितियां पैदा हुई हैं। इस अधिनियम के तहत एक देश का माल बिना रोक–टोक के दूसरे देश में बिकने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इसे बाबत तमाम तरह की शंकाएं व्यक्त की जाती रही हैं। हांगकांग में चले डब्ल्यू.टी.ओ. सम्मेलन स्थल के बाहर प्रदर्शन इसका नमूना है। नई दिल्ली में भी देश भर के जनसंगठन, किसान और डब्ल्यू.टी.ओ. के लागू करने का विरोध जता चुके हैं। इनके निवारण तथा भारतीय जैव–विविधता संरक्षण को लेकर भी वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा संगोष्ठियां आयोजित की जाती रहीं, इनमें कृषि, वनस्पति, औषधि, जीव जंतु के संरक्षण ही प्रमुख मुद्दा रहा। आज भी यही जारी है।

संरक्षण प्रयास – भारत में जैव–विविधता संरक्षण के लिये दुनिया के दूसरे विकसित देशों की तरह ही वन संरक्षण कानून 1928 से ही शुरूआत मानी जाती है। 1960–70 के दशक में इस तरफ ध्यान गया तो 1972 में वन्य जीव संरक्षण कानून अस्तित्व में आया और इसी के साथ राष्ट्रीय पार्कों व प्राणी विहारों के रूप में वनसम्पदा व वन्य जीवों के संरक्षण के नियोजित प्रयास शुरू हुए। आज देश में 87 राष्ट्रीय पार्क एवं 425 वन्य प्राणी विहार एवं 10 जैव–विविधता मंडल हैं। इनमें बाघ, शेर, मगरमच्छ, कस्तूरी मृग, बारहसिंहा, हिम तेंदुआ, हाथी व गैंडा समेत अन्य सरीसृप प्रजातियों के संरक्षण लिये विशेष परियोजनाएं चल रही हैं। वन्य जीवन पर केन्द्रित अनुसंधान व प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर भी ध्यान केंद्रित है। इनके अलावा देश में वनस्पतियों पेड़–पौधे, जीवाणुओं की विविधता बनाये रखने के सर्वेक्षण, अध्ययन व शोध के भी व्यापक कार्यक्रम हैं। 1993 में वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा नई दिल्ली में आयोजित पर्यावरण एवं विकास प्रदर्शनी से प्रथम बार जैव–विविधता को परिभाषित करने व संरक्षण का विधिवत् प्रयास किया गया था। प्रदर्शनी में देश की जैव–विविधता के साथ–साथ विकास को भी परिभाषित कर उन्हें एक–दूसरे के पूरक बताकर संरक्षण प्रयासों पर बल दिया गया था।

उत्तरांचल (उत्तर प्रदेश) में चिपको आंदोलन रहा हो या अन्य आंदोलन, या राजस्थान में बिश्नोई समुदाय द्वारा पेड़ बचाने के लिये उनसे लिपट कर जान देने का अभियान, मसूरी में चूना पत्थर खदानों पर रोक, वन–सम्पदा विशेषज्ञ इन्हें भी वन संरक्षण में ही जैव–विविधता संरक्षण को मंत्रालय प्रत्यक्ष प्रयास मानता है। नदियों व झीलों के प्रदूषण मुक्ति हेतु राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय का गठन और गंगा, यमुना, सतलुज, गोदावरी, गोमती नदियां नैनी झील व चिल्का झील की सफाई के अभियान भी झीलों व नदी प्रणाली के रूप में स्थित जैव–विविधता को बचाने के प्रयास ही हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग – इनके साथ ही विदेशी संस्थाओं के सहयोग से भी जैव–विविधता संरक्षण अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं। लुप्त प्राय वनस्पतियों को भी नये सिरे से चिन्हित करने के लिये ब्रिटिश संस्था 'ब्रोटेनिकल गार्डन कंजरवेशन इंटरनेशनल (बी.जी.सी.आई.) ने भारत में 6 करोड़ रुपये से प्रोजेक्ट शुरू किया है। लखनऊ स्थित राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान में एक राष्ट्रीय स्तर कार्यशाला के साथ ही इस अध्ययन एवं सर्वेक्षण अभियान की शुरूआत की गई है।

बी.जी.सी.आई. के एशिया एवं मध्य पूर्व क्षेत्र के निदेशक मार्क रिचर्डसन के अनुसार भारत के अलावा अमेरिका, कनाडा, ब्राजील, चीन, अर्जेन्टाइना व जापान समेत दुनिया के कई देशों में विविधता संरक्षण के लिये प्रोजेक्ट, इन्वेस्टिंग इन नेचर, के संचालन के लिये विश्व की अग्रणी संस्था एच.एस.बी.सी. से आर्थिक मदद मिली है।

भारत में ही दुर्लभ प्रजातियों के रूप में जैव–विविधता संरक्षण के लिये संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के तहत भी 1.31 करोड़ की वित्तीय मदद मिली है। यह योजना पूर्वोत्तर के हिमालयी राज्यों में शुरू की गई है। यहां छोटी–छोटी 14 प्रोजेक्ट पर कार्य शुरू हुआ है। यू.एन.डी.पी. का मानना है कि दुनिया भर में पर्यावरण की गंभीर समस्या से स्थानीय लोगों को छोटी–छोटी मददें देकर हल करना संभव है इन प्रोजेक्ट्स को क्रियान्वित कराने के लिये केन्द्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने नोडल एजेंसी के रूप में राष्ट्रीय मेजबान संस्थान का गठन किया है। इसे सेंटर फॉर एनवायरमेंट एजूकेशन ने शुरू कराया है।

भारत ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैव–विविधता संरक्षण के लिये चल रहे प्रयासों में सफलता भी मिल रही है भारत में मकाके बंदर की नई प्रजाति का पता चला है। तंजानिया में मुंजाला बंदरों की नई प्रजाति, वियतनाम में धारीदार खरगोश तथा इंडोनेशिया में मनुष्य की ही होमो फ्लोरेसियेनेसिस नामक विलुप्त हो गई प्रजाति का पता लगाने में सफलता मिली है। दिसम्बर 2004 में सुनामी के बाद अंडमान निकोबार द्वीप पर आदिवासियों की नई जाति का पता लगा है। जीव विज्ञानी नई प्रजातियों से संबंधित जानकारी एकत्र कर रहे हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

बढ़ती चुनौती पर्यावरण संरक्षण

राम अनुज मिश्र

वायुमण्डल में चारों तरफ फैले हुए वातावरण को हम पर्यावरण कहते हैं जिसके सभी घटकों में एक निश्चित अनुपात तथा खास संतुलन होता है। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ से यह संतुलन समाप्त होकर पर्यावरणीय प्रदूषण पैदा करता है। मानव का संपूर्ण विकास इसी पर्यावरण पर निर्भर करता है लेकिन मानव ने अपने प्रत्यक्ष निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए पर्यावरण को इतनी क्षति पहुंचाई कि पर्यावरण सुरक्षा आज विश्व के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है। हालांकि पर्यावरण सुरक्षा को लेकर बहुत पहले ही चिंता जाहिर की गई थी लेकिन ये सब पर्याप्त नहीं हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए 1948 में "द इंटरनेशनल यूनियन फार कंजर्वेशन ऑफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेज" की स्थापना की गयी। इसके बाद जीवमण्डल सम्मेलन (पेरिस–1968), मानव पर्यावरण सम्मेलन (स्टाकहोम–1972) पृथ्वी शिखर सम्मेलन (रियोडिजेनेरो–1992) विश्व जलवायु सम्मेलन (क्योटो–दिसंबर 1997) समेत अनेकों अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाये गये जिसमें पर्यावरण की सुरक्षा के खतरे को लेकर चिंता व्यक्त की गयी। इसी क्रम में स्टॉकहोम में हुए प्रथम मानव पर्यावरण सम्मेलन में ही 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस घोषित किया गया।

विकराल रूप लेती जनसंख्या, झुग्गी–झोपड़ियों तथा मलिन बस्तियों की बढ़ती संख्या, जंगलों का अंधाधुंध कटाव, प्राकृतिक संसाधनों का समुचित प्रबंध न होना, कूड़े–कचरे और अपशिष्ट पदार्थों का अनियोजित ढंग से फेका जाना, कल–कारखानों का निर्माण, आवासीय सुविधाओं का तीव्रता से विकास, कीटनाशक तथा खरपतवार नाशक पदार्थों का अंधाधुंध प्रयोग, वैज्ञानिक तकनीक का न अपनाना तथा जानकारी का अभाव आदि पर्यावरण विनाश के प्रमुख कारण हैं। पर्यावरण संरक्षण की समीक्षा एवं उसे मजबूत बनाने के उद्देश्य से जनवरी, 1980 में एक पर्यावरणीय परामर्श समिति का गठन किया गया। इसी समिति की सिफरिश पर नवम्बर 1980 में केन्द्रीय पर्यावरण विभाग की स्थापना की गयी, जिसे 1985 में स्वतंत्र रूप से 'पर्यावरण तथा वन मंत्रालय' का दर्जा प्रदान किया गया।

पर्यावरण प्रदूषण का तात्पर्य है आर्थिक एवं औद्योगिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पारिस्थितिकी तंत्र में इतना आवांछित परिवर्तन उत्पन्न कर देना कि वह पारिस्थितिकी तंत्र की सहनशक्ति से अधिक हो जाय तो वह असंतुलित व अव्यवस्थित हो जाता है। सामान्य रूप से जैवमंडल के सभी घटकों के समूह जो पारस्परिक क्रिया में सम्मिलित होते हैं, में इस असंतुलित अवस्था को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। आज मानव के इन्हीं कुकृत्यों के कारण तमाम तरह के प्रदूषण जैसे–वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, विकरणीय एवं रेडियोधर्मी प्रदूषण आदि पर्यावरण संतुलन के लिए चुनौती बन गये हैं। पर्यावरण में असंतुलन के कारण ही तमाम तरह के कुप्रभाव सामने आ रहे हैं। जैसे – ओजोन क्षरण, ग्रीन हाउस प्रभाव, ग्लोबल वार्मिंश, एसिड रेन (अम्लीय वर्षा) आदि।

ओजोन क्षरण की समस्या– आक्सीजन के तीन परमाणुओं से मिलकर बनने वाली गैस 'ओजोन' जो वातावरण में बहुत ही अल्प मात्रा में पाई जाती है, की प्रतिशतता पूरे वातावरण में मात्र 0.02 है। निचले वातावरण में पृथ्वी के निकट इसकी उपस्थिति पर्यावरण तथा मानव के लिए हानिकारक होती है लेकिन ऊपरी वायुमंडल में इसकी उपस्थिति पर्यावरण संरक्षण एवं मानव जीवन के लिए परमावश्यक है। ओजोन समुद्र की सतह के करीब 60 किमी. की ऊचाई तक विभिन्न सान्द्रता में पाई जाती है। पृथ्वी से 18–32 किमी. की ऊंचाई पर वायुमंडल में ओजोन गैस का एक पतला सा आवरण पाया जाता है, जिसे ओजोन परत या ओजोन मंडल कहते हैं। इस भाग में ओजोन गैस की प्रधानता होती है। यहां ओजोन की सान्द्रता लगभग 10 पी.पी.एम. अर्थात 10 लाख अणुओं का मात्र 10वां भाग होती है। इसी ओजान परत की औसत मोटाई लगभग 350 डासवन यूनिट मापी गई है। यह ओजोन परत सूर्य की अत्यन्त गर्म पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर आने से रोकती है, जिसके कारण पृथ्वी का ताप सामान्य बना रहता है। पिछले कुछ वर्षों से क्लोरोफ्लोरो कार्बन की मात्रा बढ़ने के कारण ओजोन परत में छिद्र हो गया है जिससे मानव के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है तथा तापमान में वृद्धि हो रही है।

क्लोरोफ्लोरो कार्बन यौगिक, हैलोजंस (क्लोरीन, ब्रोमीन, फ्लोरीन) नाइट्रस आक्साइड तथा फ्रियॉन गैसों की वायुमंडल में अधिकता ही ओजोन क्षरण के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है जो पूर्णतः मानव निर्मित है। ये रसायन ओजोन गैस से अभिक्रिया करके ओजोन को आक्सीजन के रूप में विघटित कर देते हैं, जिससे ओजोन परत का क्षरण होता है। परिणामस्वरूप ओजोन परत में छिद्र होता जा रहा है। फ्रियान गैस करीब 60 साल से भी अधिक लम्बे समय से रेफ्रीजरेटर तथा वातानुकूलन के लिए शीतलक के रूप में उपयोग में लाई जा रही है। जो स्थाई व अक्रियाशील है यानि कि विषैली नहीं है लेकिन वह ऊंचाई जहां पर ओजोन की सान्द्रता सबसे अधिक होती है वहां पर ये विखंडित होकर क्लोरीन का निर्माण करती है। इसकी भयानकता का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि क्लोरीन का मात्र एक परमाणु ओजोन के एक लाख अणु को बर्बाद कर सकते हैं। क्रियान के अलावा ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाली विभिन्न गैसें जैसे– मीथेन, नाइट्रिक आक्साइड और 30 अन्य गैसे व पदार्थ अब तक खोजे जा चुके हैं।

उल्लेखनीय है कि ओजोन छिद्र सर्वप्रथम 1979 में अंटार्कटिक अभियान दल ने 1984 में बताया कि इस क्षेत्र के ऊपर एक छोटे से भाग में ओजोन परत 30 प्रतिशत नष्ट हो चुकी है, जिसके कारण इसमें छिद्र बन गया है।

सर्वप्रथम ओजोन परत की जानकारी मई 1985 में अमेरिकी वैज्ञानिक जी फोरमेन द्वारा 'नेचर' नामक विज्ञान पत्रिका में प्रकाशित उनके 'ब्रिटिश अंटार्कटिक सर्वे' पर आधारित एक लेख से प्राप्त हुई। इस लेख में कहा गया था कि ओजोन गैस में निरंतर कमी आ रही है। जिसके कारण

ओजोन क्षरण हो रहा है और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के साथ ही वायुमंडल में तापमान की वृद्धि होगी तथा 'ग्रीन हाउस प्रभाव' की समस्या से लोगों को जूझना होगा।

जब जले हुए पेट्रोलियम पदार्थों से मुक्त कार्बन उत्सर्जन कृषि प्रसंस्करणों से उत्पन्न मीथेन तथा नाइट्रस आक्साइड और औद्योगिक प्रसंस्करणों से मुक्त क्लोरो–कार्बन जैसे हैलोकार्बन को वातावरण अवशोषित कर लेता है, तब हरित ग्रह प्रभाव उत्पन्न होता है। कुछ गैसें जैसे CO_2, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड CFC_3, SO_2 तथा जल वाष्प इत्यादि गैस लघु तरंगी सौर विकिरण को वायुमंडल से पृथ्वी के धरातल तक आने तो देती है लेकिन पृथ्वी से निकलने वाली दीर्घ तरंगी विकिरण को वापस वायुमंडल में नहीं जाने देती जिसके कारण पृथ्वी का तापमान गर्म हो जाता है। इसी घटना को हम 'हरित गृह प्रभाव' कहते हैं। वातावरण में निरंतर तापमान वृद्धि होने के कारण सामान्यतः हम उसे 'ग्लोबल वार्मिंग' के नाम से जानते हैं।

'ग्रीन हाउस गैसें' शब्द उन गैसों के लिए प्रयुक्त होती हैं जो मुख्यतः जीवाश्वमीय ईंधन जैसे कोयला तथा पेट्रोलियम पदार्थों के जलने से उत्पन्न होती है। एक तरफ हां ये ईंधन औद्योगिकीकरण के विकास में काफी सहायक सिद्ध हुई है, वहीं दूसरी तरफ कार्बन प्रचुर गैसों के स्तर को काफी हद तक बढ़ाने में भी मदद की है। जिसके कारण वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी का तापमान 2 से 6° फारेनहाइट बढ़ने की उम्मीद जताई गयी है। यह बढ़ता तापमान पर्यावरण में गुप्त विनाशकारी बदलाव जैसे उपद्रवकारी तूफान, बढ़ते हुए रेगिस्तान के क्षेत्र, बर्फ की चोटियों मे पिघलाव जिसके कारण समुद्र में जल स्तर का बढ़ना तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों को निगल जाने आदि घटनाओं के लिए जिम्मेदार हो सकता है। एक आंकड़े के अनुसार विश्व को ग्लोबल वार्मिंग की वजह से 5 ट्रिलियन अमेरिकी डालर की कीमत चुकानी पड़ सकती है। जिसमें विकासशील देश सबसे बुरी तरह प्रभावित हो सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन पर 1997 में हुए क्योटो समझौते की शर्तों को आगे बढ़ाने के लिए 'हेग' में ग्लोबल वार्मिंग पर संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन बुलाया गया था। 185 देशों की यह बैठक महत्वपूर्ण ग्लोबल वार्मिंग मुद्दे के बिना किसी हल के उग्र टिप्पणी के साथ समाप्त हो गयी। 1997 में क्योटो में सर्वसम्मति से यह समझौता किया गया था कि हर हाल में CHG उत्सर्जन को कम करना होगा जिससे कि 2008–2012 तक 1990 में उत्पन्न उत्सर्जन की तुलना में 5 प्रतिशत की गिरावट आ सके। जलवायु विज्ञानियों का कहना है कि उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार भारत 0.57°C प्रति सौ वर्ष की दर से गर्म होता जा रहा है। सन 1998 पिछले 100 साल में सबसे गर्म वर्ष, और इसी साल का 12 में से 9 महीने अब तक का सबसे गर्म महीना था। वैज्ञानिकों को डर है कि जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम और तेजी से गर्म हो सकता है। 2020 तक वार्षिक औसत तापमान में 1. 4°C की वृद्धि हो सकती है जबकि 2020 तक यह दर 2.7°C हो चुकी होगी। बदलता तापमान पहले से ही बहुत से क्षेत्रों की परिस्थितिकी को विध्वंस करना शुरू कर दिया है। परिणामस्वरूप भारत में उड़ीसा जैसे राज्य बुरी तरह से गर्म हवाओं से प्रभावित होंगे जिसे इसके पहले तो कभी सुने भी नहीं होंगे। पूरे विश्व में हिम नदियां पहले से ही सामान्य स्तर से अधिक तेजी से पिघल रही हैं। गंगोत्री हिमनदी 30 से.मी. प्रतिवर्ष की दर से पीछे की ओर लौट रही है। 2020 के दशक तक समुद्र जल स्तर में 4 से 8 सेंमी. प्रति वर्ष की दर से वृद्धि का अनुमान लगाया गया है तथा लगभग सभी स्थानीय मौसम के क्रम बदल जायेंगे। पहले से हम यही नहीं निश्चित कर सकेंगें कि साल का फरवरी महीना गर्म होगा या ठंडा।

अम्लीय वर्षा की घटना तेजी से गंभीर वैश्विक पारिस्थितिक समस्या का रूप धारण करती जा रही है। जो जंगल, फार्म, स्वास्थ्य और जल जीवन के लिए खतरा उत्पन्न कर रहा है। पश्चिमी जर्मनी के जंगलों का नष्ट होना, उत्तर अमेरिका में बंजर झीलों, भारत में स्मारकों का क्षरण तथा ब्राजील के कृषि क्षेत्रों की स्तर में गिरावट आदि सभी बिन्दु जीवाश्मीय ईंधन पर आधारित उद्योगों से उत्सर्जित प्रदूषण के कारण तेजी से बढ़ती अम्लीय वर्षा के भय को इंगित करते हैं। अम्लीय वर्ष 65 प्रतिशत सल्फ्यूरिक अम्ल, 30 प्रतिशत नाइट्रिक अम्ल तथा 5 प्रतिशत हाइड्रो क्लोराइड अम्ल से मिलकर बना होता है। 50 के दशक के मध्य में स्वीडन पहला देश था जिससे अम्लीय वर्षा के भय को चिन्हित किया। 1972 में स्टाकहोम में ह्यूमन इनवायरमेंट पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में अम्लीय वर्षा अंतराष्ट्रीय समस्या बनकर उभरी। SO_2 वातावरण के ऊपरी भाग में पहुंचकर जटिल रासायनिक अभिक्रिया द्वारा सल्फ्यूरिक एसिड में परिवर्तित हो जाती है। 60 मिलियन टन SO_2 यूरोप में प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है। इंग्लैंड अकेले 4 मिलियन टन उत्पन्न करता है। स्वीडन और कनाडा संभवतः अम्लीय वर्षा से सबसे बुरी तरह से प्रभावित देश है। कनाडा, उत्तरी अमेरिका में स्थिति विशाल पेट्रोकेमिकल यूनिट की वजह से उत्पन्न प्रदूषण के परिणामस्वरूप अम्लीय वर्षा का सामना करता है। जबकि स्वीडन, उत्तरी फ्रांस और इंग्लैंड से प्रभावित होता है। स्वीडन में करीब 10,000 शुद्ध जलीय झील अनियंत्रित अम्लीय वर्षा की वजह से क्षय हो रही है। भारत में कर्नाटक और महाराष्ट्र अम्लीय वर्षा को अनुभव करने वाले प्रथम राज्य माने जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि अम्लीय वर्षा की घटना केवल औद्योगिकीकृत देशों की सीमाओं तक ही सीमित है। यहां तक कि तीसरी दुनिया के कई देश जैसे–भारत, ब्राजील और थाईलैंड अम्लीय वर्षा की वास्तविकता के प्रति, चौकन्ने नजर आ रहे हैं। मथुरा में स्थित तेल प्रशोधक कारखाना ऐतिहासिक महत्व के स्मारक जैसे ताजमहल और कृष्ण मंदिर के लिए खतरे का सूचक माना जा रहा है। 1996 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने ताजमहल को पहुंचने वाले और क्षति से आगरा के चारों तरफ के सभी औद्योगिक इकाइयों में प्रयोग होने वाले कोयले को प्रतिबंधित कर दिया है।

एक सवाल जो बार–बार दिमाग में आता है कि अम्लीय वर्षा से निपटने के लिए उठाये गये कदम कैसे प्रदूषण या अम्लीय वर्षा में बिना वृद्धि के औद्योगिक विकास को गति प्रदान कर सकेगा। पर्यावरण विशेषज्ञों द्वारा सुझाव दिया गया है कि भारत विकसित देशों के अनुभवों से सीख ले और विनाश को रोकने के लिए उचित कदम उठाये।

(नवोदित पत्रकार)

स्वच्छ पर्यावरण में स्वस्थ जीवन का विकास

राजेन्द्र सिंह बिष्ट

आज सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण के बिगड़ते हालात और असंतुलन को लेकर परेशान हैं। मगर सवाल यह है कि आखिर यह बला है क्या जो पूरे विश्व को परेशानी में डाले हुए है। इसी सवाल को खोजने तथा लोगों को इसके प्रति जागरूक बनाने के लिए सम्पूर्ण विश्व हर साल 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है।

पर्यावरण को सुधारने के लिए सरकार न सिर्फ लोगों को इस बारे में सक्रिय माध्यमों से जानकारी देती है बल्कि एक सक्रिय सदस्य की तरह कार्य भी करती है। अगर दिल्ली का उदाहरण लें तो कुछ वर्ष पहले दिल्ली के वाहनों में सी.एन.जी. के उपयोग के शुरू होने के बाद प्रदूषण स्तर काफी कम हो गया है। सरकार गांवों में सड़कों के किनारे पेड़ लगा रही है तथा हरियाली फैलाने वालों को प्रोत्साहित भी कर रही है। गंगा एवं यमुना की सफाई पर भी ध्यान दिया जा रहा है यहां तक कि दिल्ली सरकार यमुना को लंदन की टेम्स की तर्ज पर सफाई करने की योजना भी बना रही है।

यह पर्यावरण और संतुलन ऐसा क्या है जो सभी की नींद हराम किए हुए हैं। मानव चारों ओर से प्राकृतिक दशाएं जैसे– वायु, जल, तापमान, मौसम, भूमि की बनावट, वन खनिज पदार्थ आदि तथा सामाजिक दशाएं जैसे सामाजिक समूह और सामाजिक मान्यताएं आदि से जुड़ा हुआ है क्योंकि मानव को इन सब दशाओं की कदम–कदम पर आवश्यकता पड़ती है। जब प्राकृतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक तीनों दशाएं पूर्ण रूप से समन्वित होकर मानव को घेरती है तो यह घेराव ही पर्यावरण का रूप ले लेता है।

मनुष्य एवं पर्यावरण का एक अटूट रिश्ता रहा है। जिस तरह एक स्वस्थ तन में स्वस्थ मन का निवास होता है ठीक उसी तरह स्वच्छ पर्यावरण में स्वस्थ जीवन का विकास होता है। लेकिन आज मानव अपने इस जीवनदायिनी पर्यावरण को अपने ही अप्राकृतिक गतिविधियों से असंतुलित कर रहा है। उसकी इन गल्तियों का शिकार सिर्फ हमारी प्राणदायिनी वायु ही नहीं बल्कि भूमि, जल एवं जीवन का बहुत बड़ा हाथ है। मोटरगाड़ियों से निकलने मोनो ऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाईड आदि हमारे फेफड़ों, चमड़े के साथ–साथ अन्य ग्रंथियों को भी प्रभावित करते हैं। इन्हीं प्रतिष्ठानों से निकलने वाले सल्फर, लैड, जिंक, मरकरी, निकल आदि सिर्फ वायु को ही नहीं बल्कि जल एवं भूमि के साथ–साथ रेडियो एक्टिव प्रदूषण भी फैलाते हैं।

सिर्फ इतना ही नहीं कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा वातावरण में बढ़ने से तापमान लगातार बढ़ता ही जा रहा है। प्राकृतिक रूप से जहां 5 डिग्री तापमान में वृद्धि होने में 10 से 20 हजार वर्ष लग जाते हैं वहीं आज की इस रफ्तार से यह सिर्फ 50 सालों में ही बढ़ जाएगा। यह बढ़ता तापमान पृथ्वी के सम्पूर्ण प्रजातियों के लिए खतरा है। ग्लेशियरों के पिघलने, बर्फ की मात्रा कम होने तथा समुद्र के जल स्तर में बढ़ोतरी समूचे विश्व को जलमग्न बना सकती है।

जल ही जीवन है लेकिन अगर प्रदूषित हो तो हजारों बीमारियों को बढ़ावा देता है। आज वनों को लगभग 14 करोड़ हेक्टेयर हिस्सा हर वर्ष उजड़ रहा है। भू–संरक्षण नदियों में सीधे बहाए जाने वाले औद्योगिक कचरे, तालाबों के किनारे मलमूत्र त्यागने, मृतकों तथा अधजले शवों को नदियों में बहाने और अत्यधिक कीटनाशकों एवं उर्वरकों के प्रयोग आदि कारणों से जल अमृत की बजाए विष बनता जा रहा है। केवल जल और वायु ही नहीं बल्कि भूमि भी इससे प्रभावित है। प्लास्टिक के थैले, कांच के डिब्बे, राख, डीडीटी आदि का अत्यधिक उपयोग भूमि के साथ–साथ उस पर उगने वाली फसल को भी प्रभावित करता है।

तेज आवाज में बातें करना, म्युजिक सुनना, आजकल का फैशन हो गया है लेकिन क्या हमने कभी इस बात पर गौर किया है कि इसके प्रभाव क्या होगा। तीव्र आवाज हमारी श्रवण इंद्रियों के साथ–साथ हमारे शरीर के कई महत्वपूर्ण अंगों पर कुप्रभाव डालता है। जिससे हम बहरे हो सकते हैं एवं हृदय रोगियों को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। जीवन की इस तेज रफ्तार में जहां हमें विज्ञान से लाभ हुआ है वहीं हमें इसके नुकसान को भी झेलना पड़ता है। प्रदूषण के इस विकट समस्या से जूझना आज विश्व के लिए भारी पड़ रहा है। इससे निपटने के लिए न केवल सरकार को बल्कि समाज सेवी संस्थाओं तथा आम जनता को भी प्रयास करने होंगे। प्रदूषण की रोकथाम के लिए हमें समाज के साथ जुड़ना होगा तथा पर्यावरण नियंत्रण के कार्यक्रमों को सजगता से चलाना होगा। जैसे बूंद–बूंद से घड़ा भरता है वैसे ही इस क्षेत्र में एक छोटा सा योगदान भी महत्वपूर्ण है। पर्यावरण संरक्षण के लिए चहुंमुखी प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। हम सबका यह प्रयास होना चाहिए कि पर्यावरण को स्वच्छ व प्रदूषण मुक्त बनाने की दिशा में कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ें तभी यह संभव हो सकता है।

संयुक्त राष्ट्र के आंकड़े बताते हैं कि अमीर देशों में विश्व की कुल जनसंख्या के 20 से 22 प्रतिशत लोग ही रहते हैं पर विश्व के औद्योगिक कचड़े का 68 प्रतिशत हिस्सा यहां पैदा होता है। उपभोक्तावाद के बाजार में सजने वाली नई–नई वस्तुओं की तो बात ही रहने दें यदि हम केवल उन वस्तुओं को पैक करने वाली सामग्री का आकलन करें तो केवल इस पैकिंग सामग्री से बहुत बड़े पैमाने पर और तरह–तरह से पर्यावरण का विनाश हो रहा है।

इसके अलावा यदि हम पिछले दशकों के अनुभव को ध्यान से देखें तो इस कड़वे सच से इंकार नहीं किया जा सकता है कि जिस दौरान पर्यावरण बचाने की बात सबसे अधिक हुई है उस दौरान ही कई संदर्भों में पर्यावरण का संकट पहले से और विकट होता चला गया है। अतः यदि इसे और विकट होने से बचाना है तो संकीर्ण स्वार्थों से निकल कर बुनियादी तौर से नये–नये तरह के विकास के बारे में सोचना होगा।

प्रदूषण की इस बढ़ती समस्या पर हम कई तरीकों से रोक लगा सकते हैं। उद्योगों में प्रदूषण रोधक संयंत्र अनिवार्य रूप से लगाना चाहिए, यातायात के साधनों से होने वाले प्रदूषण से बचने के लिए वाहनों में प्रदूषण नियंत्रण यंत्र लगाना चाहिए। कैंप लगाकर वाहन चालकों को प्रदूषण के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए एवं प्रत्येक व्यक्ति को एक हरा पेड़ लगाने के लिए प्रेरित करना चाहिए, साथ ही आस–पास एकत्रित कूड़े–कचरे की सफाई का भी खास ध्यान रखना चाहिए। उन सभी अपशिष्ट पदार्थों को एक स्थान पर एकत्रित करना चाहिए जिसका चक्रीकरण हो सकता है। शोर मचाने वाले वाहनों को सड़क पर चलने से रोकना चाहिए तथा तीव्र ध्वनि उत्पन्न करने वाले यंत्रों पर रोक लगा देनी चाहिए। औद्योगिक कारखाने शहर से दूर बनाने चाहिए एवं उससे निष्काषित अपमार्जक एवं जहरीले अपशिष्ट पदार्थों का उचित उपचार किया जाना चाहिए। प्रदूषण की इस समस्या ने हमारे पर्यावरण एवं जीवन दोनों पर कुप्रभाव डाला है और अगर हमने इस पर ध्यान नहीं दिया तो यह हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। इसलिए हमें इस समस्या के खिलाफ कदम से कदम मिलाकर चलना होगा ताकि नई पीढ़ियों को एक स्वच्छ एवं सुंदर वातावरण मिले।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

पृथ्वी के अस्तित्व पर मंडराता संकट

राकेश शर्मा

सुनामी, कैटरीना, रीटा जैसी समुद्री तबाही और भूकंप, तूफान, भूस्खलन, बाढ़, महामारी जैसी अनेक प्राकृतिक आपदाएं मानव की नासमझी का नतीजा है। प्राकृतिक आपदाओं से मानव सभ्यता पूरी तरह सुरक्षित रह सके इसके लिए प्रत्येक वर्ष विश्व में 22 अप्रैल को विश्व पृथ्वी दिवस मनाया जाता है। इस दिन को मनाने का उद्देश्य ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से गरमाती हुई पृथ्वी (ग्लोबल वार्मिंग) और इस उत्सर्जन को घटाने वाली व्यवहारिक और कम लागत की प्रायोगिक परियोजनाओं की ओर विश्व समुदाय का ध्यान आकर्षित करना है ताकि पृथ्वी की देखभाल करके निरंतर जीवन के लिए रणनीतियां विकसित की जा सकें। वैज्ञानिकों के अनुसार यदि हम समय पर नहीं चेते तो इक्कीसवीं सदी के आखिर में हमें प्रलय का सामना करना पड़ सकता है।

पुणे स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ ट्रॉपिकल मैट्रियालॉजी के अनुसार तापमान में अचानक उतार–चढ़ाव, कहीं वर्षा की बारंबारता बढ़ना और कहीं बिल्कुल वर्षा न होना ग्लोबल वार्मिंग की वजह से होने वाले जलवायु परिवर्तन का संकेत है। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, वह केवल मात्र इंसानों की वजह से आबाद नहीं है बल्कि यहां कुछ फूल हैं, कुछ तितलियां हैं, पेड़–पौधे हैं, वन्य प्राणी, पक्षी आदि हैं, इन सभी को मिलाकर इंसानी समाज से अलग एक अन्य समाज भी है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर लगभग 10 करोड़ प्रजातियां हैं। परंतु जंगलों के अंधाधुंध दोहन से बहुत से जीव और पादप प्रजातियां लगातार समाप्त होती जा रही हैं।

गरमाती पृथ्वी

अमरीका के वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट ने अपनी रिपोर्ट स्टेट ऑफ द वर्ल्ड 2006 में पारिस्थितिकी पर कई चौंकाने वाले तथ्य, अनुमान और सुझाव व्यक्त किए हैं। इसमें कहा गया है कि 2030 तक चीन और भारत आर्थिक शक्ति बनने के साथ–साथ वैश्विक जैवमंडल को नियंत्रित करने वाली ताकतें बन जाएंगी लेकिन 2.5 अरब की जनसंख्या वाले चीन और भारत का प्रति व्यक्ति संसाधन उपभोग स्तर 2030 तक जापान के बराबर पहुंच जाएगा। बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने के लिए एक नयी पृथ्वी की जरूरत होगी। विश्व में 40 प्रतिशत बिजली कोयला जलाकर पैदा की जाती है। अगर भविष्य में भी कोयले से ही बिजली पैदा की जाती रही तो अनुमान है कि ऊर्जा क्षेत्र में वर्ष 2020 तक इसका इस्तेमाल 60 प्रतिशत से भी ज्यादा हो जाएगा। इसका परिणाम यह होगा कि हर साल लाखों टन कार्बन डाईऑक्साइड वातावरण में जहर घोलेगी और इसकी वजह से तापमान में तेजी से वृद्धि होगी। 20वीं सदी में विश्व के तापमान में 0.7 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई लेकिन 1970 के दशक में गरमाहट की यह दर तीन गुना बढ़ी। 1861 में जब से रेकार्ड रखने की शुरुआत हुई, तब से पिछले दशक में 10 में से 9 साल सर्वाधिक गरम रहे। 2005 इनमें सबसे गर्म साल था।

प्रकृति के प्रकोप का प्रभाव

संयुक्त राष्ट्र के अनुमान के अनुसार वर्ष 2100 तक दुनिया का तापमान 1.4 से 5.8 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा, जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा, अनेक देशों के तटवर्ती इलाके डूब जाएंगे, नए रेगिस्तान बनेंगे या सूखे इलाके भी बाढ़ में डूब जाएंगे। न्यूज वीक पत्रिका के अनुमान के अनुसार वर्ष 2003 में यूरोप में गर्मी की लहर या हीट वेव से 40,000 लोग मर गए थे। वर्ष 2004 में मौसम संबंधी आपदा से 104 अरब डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ, जो वर्ष 2003 में हुए नुकसान का लगभग दुगुना था। वर्ष 2004 में विश्व में तीन करोड़ लोग पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं के चलते शरणार्थी जीवन जी रहे थे। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अनुमान के अनुसार वर्ष 2010 तक उनकी संख्या 5 करोड़ और 2050 तक 15 करोड़ हो सकती है। वर्ष 1980 के दशक में प्राकृतिक आपदाओं में हर साल औसतन 22,000 लोगों की मौत हुई। यह 1990 के दशक में बढ़कर 33,000 हो गई।

पिछले 100 सालों में रूस में स्थित कॉकेशस पर्वत में कुल ग्लेशियरों में से आधों की बर्फ खत्म हो चुकी है। स्पेन में 1980 तक अस्तित्व में रहने वाले कुल ग्लेशियरों में से आधे खत्म हो चुके हैं। गढ़वाल हिमालय स्थित गंगोत्री ग्लेशियर हर वर्ष 30 मीटर और पिंडारी ग्लेशियर 13 मीटर की दर से सिमट रहा है। अनुमान है कि 2035 तक सभी मध्य, पूर्वी हिमालयी ग्लेशियर खत्म हो जाएंगे। नेपाल में एवरेस्ट के रास्ते में पड़ने वाला खुंबू ग्लेशियर 1953 से अब तक 5 किलोमीटर सिकुड़ गया है। आर्कटिक महासागर में हर दशक में 7 प्रतिशत की दर से हिम आवरण खत्म हो रहा है। हवाई द्वीप (अमरीका) में समुद्र का जल स्तर बढ़ने से कई समुद्रतट नष्ट हो चुके हैं। फिजी में हर साल समुद्रतट रेखा 0.15 मीटर डूब रही है तो चीन में जहां समुद्र का स्तर बढ़ रहा है वहीं 40 सालों में तियेनशान पर्वत के ग्लेशियर की बर्फ 25 प्रतिशत सिमट गई है।

भूस्खलन

भूस्खलन यानि पहाड़ों से बड़े पैमाने पर पत्थर, चट्टान, मिट्टी व मलबा गिरने तथा जमीन के धसकने से मिला–जुला विनाश तेजी से बढ़ रहा है। यह एक ऐसी प्राकृतिक आपदा है जो बहुत तेजी से विनाश करती है। इससे मानव जीवन की क्षति अधिक होती है। इसका सबसे बड़ा कारण मनुष्य की अपनी अनेक गल्तियां है। अकेले हिमालय क्षेत्र में लगभग 50,000 किलोमीटर की सड़कें बन जाने के कारण वहां अनेक भूस्खलन क्षेत्र बन गए हैं। असावधानी से व अनियंत्रित ढंग से किया गया खनन का कार्य अनेक भूस्खलनों का कारण बनता है। थाईलैंड में वर्ष 1988 में बड़े पैमाने के भूस्खलन में 400 लोगों की मृत्यु हुई थी। इसी वर्ष रियो द जेनेरो, ब्राजील में भूस्खलन द्वारा 277 लोग मारे गए थे और 735 जख्मी हुए व 22,000 विस्थापित हुए थे।

महासागर दोहन

महासागरों में ठोस व तरल कचरे को फेंकना एक आम विश्व समस्या है। समुद्र में तेल के बिखरने, औद्योगिक कचरे के गिरने और जल प्रदूषण से अंतर्राष्ट्रीय जल प्रणालियां और जैव–विविधता प्रभावित होती है। तापमान असंतुलन समुद्र का जलस्तर बढ़ाएगा, जिससे वह जमीन को निगलने लगेगा। समुद्र के किनारे बसे छोटे–मोटे द्वीपों और शहरों का नामोनिशान मिट जाएगा। दुनिया की अधिकांश आबादी जो अपने भोजन में मछलियों को प्राथमिकता देती है, समुद्र के गर्म होने की वजह से मछलियों की मौत के कारण भुखमरी की तरफ बढ़ने लगेगी। वैज्ञानिकों के अनुसार दुनिया में बढ़ रहे तापमान ने कैटरीना की विध्वंसात्मक शक्ति को बढ़ाया है।

जल, वायु तथा ध्वनि प्रदूषण

सर्वाधिक प्रदूषण पैदा करने वाले देश हैं– अमरीका, यूरोपीय यूनियन के देश, चीन, रूस, जापान और भारत। प्रतिवर्ष करीब 10 करोड़ टन अपशिष्ट पदार्थ वातावरण में घुलकर वायु को प्रदूषित कर रहे हैं। यह अपशिष्ट पदार्थ फैक्टरियों व कारखानों से निकलने वाले धुएं, और गैसों के रूप में वायुमंडल में फैल रहे हैं। अट्ठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में जैसे–जैसे उद्योग बढ़ने लगे, पानी की खपत बढ़ने के साथ पानी प्रदूषित भी होने लगा क्योंकि इसमें उद्योगों का कचरा तथा बेकार हो गए रसायनिक द्रव बहुत अधिक मिल जाते हैं। जल के परंपरागत स्रोत सूख रहे हैं। पेयजल विश्वव्यापी समस्या बन चुकी है। अधिक शोर होना ध्वनि प्रदूषण है। जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ती जा रही है वैसे–वैसे मोटरें, कारें आदि अनेक यातायात के साधन तथा कल–कारखाने, फैक्ट्रियां और बड़े उद्योग अस्तित्व में आते जा रहे हैं इससे ध्वनि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है।

कम्प्यूटर का कचरा (ई–कचरा)

आज जिस प्रकार प्लास्टिक की थैलियां, पॉलीथीन हमारे लिए सिरदर्द बन गया है, वैसे ही एक समय में कम्प्यूटर का कचरा हमारा जीना दूभर कर देगा। एक अनुमान के अनुसार दुनिया भर में 1997 से 2007 के बीच 50 करोड़ कम्प्यूटर कचरे में परिवर्तित हो जाएंगे। इसी प्रकार मोबाइल का कचरा इसमें और भी इजाफा कर सकता है। प्रत्येक कम्प्यूटर और टीवी की स्क्रीन में चार से आठ पौंड तक लेड धातु का उपयोग होता है। कम्प्यूटर मॉनीटर के शीशे में कुल वजन का 20 प्रतिशत हिस्सा लेड का होता है। यह धातु दोबारा मिट्टी में मिलकर उसे संक्रमित करती है। मोबाइल फोन भी ई–कचरे का एक बड़ा अंग है। इन्फोकॉम के एक अध्ययन के अनुसार अमरीका में लगभग 13 करोड़ सेलफोन हर साल कचरे के डिब्बों में फेंक दिए जाएंगें। इससे प्रत्येक वर्ष 65 हजार टन कचरा पैदा होगा जो संक्रमण फैलाने वाले रसायन व धातु तत्वों को शामिल किए हुए होगा।

ओजोन परत का क्षरण

ग्रीन हाउस गैसों के कारण पृथ्वी के बढ़ते तापमान का सिद्धान्त वर्ष 1903 में स्वांते एरिनस नामक वैज्ञानिक खोजा था। परन्तु ग्लोबल वार्मिंग के सिद्धांत को मान्यता काफी देर बाद मिली। वर्ष 1979 में जिनेवा में प्रथम विश्व जलवायु सम्मेलन में समस्या की गंभीरता समझी गई। ओजोन एक ऐसी गैस है जो धरती पर जीवन की सुरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यह सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को पृथ्वी पर पहुंचने से रोकती हैं। पृथ्वी की ओर आती सूर्य की किरणें यदि पूरी मात्रा में पृथ्वी पर आ जाएं तो धूप बहुत तेज होगी, तापमान असहय हो जाएगा। वनस्पतियां, जीव–जंतु झुलस जाएंगे। आखें खराब हो जाएंगी, शरीर पर झुर्रियां पड़ जाएंगी, बुढ़ापा शीघ्र आ जाएगा, रोगों से लड़ने की शक्ति नष्ट हो जाएगी। हिम खंडों के पिघलने से नदियों, झीलों और सागरों में जल स्तर बढ़ जाएगा और धरती का एक बड़ा भाग जलमग्न हो जाएगा।

वर्ष 1980 में आस्ट्रिया में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम व विश्व मौसम विज्ञान संगठन की बैठक में जलवायु परिवर्तन को एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में स्वीकृति मिली परंतु तब तक धरती की ओजोन परत ने छीजना शुरू कर दिया था। वर्ष 1985 में विएना कन्वेंशन, 1987 में मांट्रियल प्रोटोकल, 1988 में टोरंटो सम्मेलन, 1990 में द्वितीय विश्व जलवायु सम्मेलन, 1992 में रियो दि जेनेरियो में पृथ्वी सम्मेलन से लेकर 1997 में क्योटो प्रोटोकाल तथा अनेक आयोजन पर्यावरण को बचाए रखने के सिलसिले में हो चुके हैं, लेकिन न तो ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर कोई प्रभावी रोक लग सकी है और न ही उत्सर्जन में उल्लेखनीय कमी लाई जा सकी है। 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल को लागू नहीं किया जा सका है। इसके अंतर्गत 38 औद्योगिक राष्ट्रों को वर्ष 2012 तक गैस उत्सर्जन में 5.2 प्रतिशत की कटौती करनी थी।

बढ़ता रेगिस्तान

ग्लोबल वार्मिंग के नए खतरों में पृथ्वी पर बढ़ता रेगिस्तान भी समस्या बनता जा रहा है। मरूस्थलीकरण का परिणाम यह है कि रेगिस्तान दुनिया के 110 देशों में अपने पैर फैला चुका है। इन देशों में अल्पविकसित, विकसित और विकासशील सभी तरह के देश शामिल हैं। वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट के अनुसार घास की चराई व वनों के अंधाधुंध कटने से पृथ्वी की ऊपरी परत की 24 अरब टन उपजाऊ मिट्टी हवा में उड़ जाती है। इस कारण दुनिया में प्रत्येक वर्ष 42 अरब डॉलर से अधिक का नुकसान रेगिस्तान पैदा होने से झेलना पड़ता है। प्रत्येक वर्ष पांच लाख हेक्टेयर भूमि मनुष्यों की भोगवादी संस्कृति के कारण रेगिस्तान में बदल रही है।

भूकम्प

पिछले सौ साल के जानलेवा भूकंप आए, जिनकी रिक्टर पैमाने पर तीव्रता 7 से 9 के बीच थी। इन भूकम्पों में लाखों व्यक्तियों की जानें गईं 8 अक्तूबर, 2005, को आए भूकंप से मुजफ्फराबाद, कश्मीर में 28,000 लोगों की जानें गई थीं। वर्ष 2004 में सुमात्रा, इंडोनेशिया में भूकंप और सुनामी लहरों की चपेट में 2,32,000 लोगों की जान गई। इसी प्रकार वर्ष 1976 में तंगशान, चीन में 2,55,000, 1970 में पेरू में 66,000, वर्ष 1956 में चीन के सैसी, शांसी व होनान प्रांत में आए भूकम्प में लगभग 8,30,000 लोग मारे गए थे। वर्ष 1948 में तुर्कमेनिस्तान में 1,10,000, वर्ष 1935 में क्वेटा, पाकिस्तान में लगभग 50,000, वर्ष 1932 में गांसू, चीन में 70,000, वर्ष 1927 में झाइनिंग, चीन में 2,00,000, वर्ष 1923 में कांटो, जापान में भूकंप और उसके कारण लगी आग में 1,43,000 लोग मारे गए थे। वर्ष 1920 में गांसू, चीन में 2,00,000 और वर्ष 1908 में मेसिना, इटली में लगभग 1,00,000 लोगों की जाने गईं थीं।

पृथ्वी को बचाना ही होगा

पृथ्वी को बचाने और अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए नब्बे के दशक में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में विश्व के लगभग 115 राष्ट्राध्यक्षों, शासनाध्यक्षों व शीर्षस्थ नेताओं ने भाग लिया था। उस समय ऐसा लगा कि आगामी दस वर्षों मे पर्यावरण से जुड़ी समस्याओं को दूर कर दिया जाएगा परन्तु दुनिया के अमीर देश, जो सुख–सुविधाओं के आदी हो चुके हैं, उनके सहयोग के कारण पर्यावरण की समस्या जस की तस बनी हुई है।

संयुक्त राष्ट्र के ग्लोबल इन्वायरमेंट आउटलुक–3 में छपे आंकड़ों के अनुसार 2032 तक पृथ्वी की ऊपरी सतह का 70 प्रतिशत भाग तबाही के कगार पर पहुंच जाएगा। हमारे देश मे वृक्षों की अंधाधुंध कटाई से वनों का क्षेत्रफल तेजी से घटता जा रहा है। पर्यावरण की अपूरणीय क्षति हो रही है। भारत की वन नीति के अनुसार देश के कुल भौगोलिक भू–भाग का 33 प्रतिशत वनाच्छादित होना चाहिए। भारतीय वन सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2003 तक देश का करीब 19.27 प्रतिशत भाग वनाच्छादित था। इसमें केवल 11.7 प्रतिशत भाग पर सघन वन हैं। केन्द्र सरकार का लक्ष्य है कि वर्ष 2007 तक वनाच्छादित क्षेत्र 25 प्रतिशत और वर्ष 2012 तक 33 प्रतिशत हो जाना चाहिए। इस योजना के लिए 8,000 करोड़ रुपये का निवेश प्रस्तावित है और केन्द्र की योजना है कि इस काम में निजी क्षेत्र के साथ ही जन भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

भारत पर्यावरण परिवर्तन के बारे में संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कनवेंशन का सदस्य है। इस संस्था का उद्देश्य पर्यावरण के ग्रीनहाउस गैस सांद्रिकरण के स्तर को इस तरह नियंत्रित रखना है ताकि मानवीय कारणों से जलवायु व्यवस्था खतरनाक न हो सके। अगस्त, 2002 में क्योटो संधि में भारत शामिल हुआ। इसका उद्देश्य स्वच्छ विकास की व्यवस्था के क्रियान्वयन के लिए पूर्वापेक्षा को पूरा करना है। क्योटो संधि के अनुसार विकसित देश 2008–2012 के दौरान ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत के औसत से घटाएंगे। ओजोन परत को सुरक्षित रखने के लिए सत्तर के दशक के आरंभ में विश्वव्यापी प्रयास किए गए थे। ओजोन को नष्ट करने वाले पदार्थों– ओडीएस पर 1985 में वियना समझौता हुआ और 1987 में मांट्रियल संधि प्रस्ताव पारित हुआ। भारत मांट्रियल संधि प्रस्ताव में 1992 में लंदन संशोधन के साथ शामिल हुआ।

जिस तीव्रता से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है, उस पर समय रहते हुए काबू नहीं पाया गया तो अगली सदी में तापमान 60 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाएगा। पृथ्वी के वातावरण में तापमान संतुलन के बिगड़ जाने के परिणामस्वरूप बड़े–बड़े चक्रवात आएंगे। उपरोक्त भयावह तस्वीर मात्र चौंकानेवाली नहीं है बल्कि समय रहते सतर्क नहीं हुए तो दुनिया के विकसित देश, विकासशील और पिछड़े देशों को अनचाहे संकट से गुजरना होगा। यदि हमें मानव के अस्तित्व को बचाना है तो हमें पृथ्वी के अस्तित्व को बचाने के लिए कारगर तरीके अपनाने होंगे। विश्व भर में हर वर्ष विश्व पृथ्वी दिवस के अवसर पर मात्र सरकारी कार्यक्रम, संगोष्ठियां, समारोह, भाषण आदि के जरिए पृथ्वी को बचाया नहीं जा सकता। इसके लिए ठोस उपाय करने होंगे। आज जबकि 60–70 प्रतिशत व्यक्ति पर्यावरण के विषय में जागरूक हो चुके हैं ऐसे में वे पर्यावरण को बचाने में काफी मददगार हो सकते हैं।

गैर–सरकारी संगठन पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करके प्रदूषण को कम करने में बड़ी भूमिका अदा कर सकते हैं। प्राकृतिक जंगलों को बचाना बहुत आवश्यक है। जहां प्राकृतिक वन लुप्त हो रहे हैं वहां उन्हें नवजीवन देने की कोशिश करनी होगी। जल संग्रहण और संरक्षण को उच्चतम प्राथमिकता देनी होगी। ऊर्जा पैदा करने वाले उन तरीकों से मुक्ति पानी होगी, जिनकी वजह से प्रदूषण होता है और पृथ्वी गरमाती है। इसके दुष्परिणाम से बचने के लिए बिजली क्षेत्र में बायोमास, सौर ऊर्जा और भू–तापीय ऊर्जा जैसे विकल्पों को इस्तेमाल करना होगा। परमाणु ऊर्जा कार्बन डाइऑक्साइड पैदा नहीं करती, इसलिए यह ऊर्जा अन्य विकल्पों की जगह ले सकती है।

ग्लोबल वार्मिंग–ग्लोबल वार्निंग

हमारी पृथ्वी साढ़े चार अरब वर्ष पुरानी है। पृथ्वी पर मौजूद जीवाणुओं ने करोड़ों वर्षों तक कार्बनडाईआक्साइड सोखकर और आक्सीजन छोड़कर वायुमंडल को जीवों के लिए सांस लेने योग्य बनाया। जीवन के चार अरब साल के इतिहास में पृथ्वी पांच बार बड़े विनाश या विलुप्ति के दौर से गुजर चुकी है। वनस्पतियों और जीव–जंतुओं का पूर्ण रूप से सफाया होने के ये कारण माने जाते हैं–गामा–रे विस्फोट, जलवायु परिवर्तन, वायुमंडल में आक्सीजन के स्तर क कमी, पृथ्वी से उल्कापिंड का टकराना और ग्लोबल वार्मिंग आदि। पांच बार पृथ्वी के विनाश का कारण शायद ग्लोबल वार्निंग ही होगा यदि हम समय पर नहीं चेते तो।

देश भर में बढ़ते तापमान का ताजा आंकड़ों से पता चलता है कि गर्मी का प्रकोप साल–दर–साल बढ़ता जा रहा है। तापमान के सारे रिकार्ड टूट रहे हैं बल्कि गर्मी के मौसम की अवधि भी लगातार बढ़ती जा रही है। इससे देश का औसत तापमान भी ऊपर उठा रहा है। ग्लोबल वार्मिंग की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। इस समस्या का कारण मनुष्य ही है। औद्योगिक क्रांति के बाद जिस तरह से प्रकृति का दोहन किया गया है उससे वायुमंडल में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा में वृद्धि हुई है। इसके अलावा अन्य ग्रीन हाउस गैसों जैसे मिथेन का भी खूब उत्सर्जन हुआ है।

पृथ्वी के तापमान को रिकार्ड करने का सिलसिला वर्ष 1860 से प्रारंभ हुआ। पृथ्वी पर जितनी ऊर्जा और गर्मी पैदा हो रही है। वह अवशोषित नहीं हो पाती। इसका नतीजा है कि पृथ्वी गर्म होती जा रही है। 1950 में कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा वायुमंडल में जहां 315 पीपीएम (पाटर्स पर मिलियन) के आसपास थी। वहीं पर अब यह मात्रा 375 पीपीएम को पार कर चुकी है। यदि कार्बनडाईआक्साइड की मात्रा इसी तरह बढ़ती रही तो 21वीं सदी पूरी होने तक करीब 650 से 950 पीपीएम तक हो जाएगी और 1990 के मुकाबले पृथ्वी का तापमान 6 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा।

हमारा पर्यावरण खतरे में पड़ चुका है। हम अपने पूर्वजों से मिले साफ–सुथरे पर्यावरण का इस कदर नाश कर चुके हैं कि आने वाली पीढ़ी इसमें चैन से सांस लेने के बजाय अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करती नजर आएगी। यदि वैश्विक परिदृश्य में देखें तो विश्व के लगभग 21 ऐसे औद्योगिक देश हैं जो वायुमंडल में लगभग 80 प्रतिशत कार्बनडाईआक्साइड छोड़ते हैं, जिनमें अमेरिका सर्वोपरि है।

बढ़ते तापमान का दूरगामी असर हमारे देश की जीवन रेखा कहलाने वाले मानसून पर दिखाई पड़ने लगा है। मानसूनी वर्षा का कोई ठिकाना नहीं रह गया है। अब पता नहीं चलता कि वर्षा कब आएगी और कितने समय रहेगी। तापमान बढ़ने से हिमालयी ग्लेशियरों के पिघलने की दर तेजी से बढ़ रही है। इससे नदियों में ज्यादा पानी आएगा जो बाढ़ की मुसीबत पैदा करेगा और फिर नदियां हमेशा के लिए सूख जाएगी। गंगा को जीवनदान देने वाली गंगोत्री ग्लेशियर 30 मीटर सालाना की दर से सिकुड़ता जा रहा है।

बर्फ के पिघलने से स्वाभाविक रूप से समुद्र के जल स्तर में वृद्धि होने लगी है जिसकी वजह से कई टापुओं और विभिन्न तटीय इलाकों के डूबने का खतरा बना हुआ है। जल स्तर में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ समुद्रीय जल का तापमान भी बढ़ता जा रहा है। एक शोध के अनुसार 1940 के बाद पृथ्वी के 6 महासागरों के बेसिन का तापमान 5 डिग्री सेल्सियस बढ़ गया है जिसकी वजह से समुद्री जलधाराओं के प्रवाह में भी बदलाव आ सकता है।

भौगोलिक परिवर्तन के साथ–साथ ग्लोबल वार्मिंग से जैव मंडल भी काफी प्रभावित हो रहा है। न सिर्फ स्थलीय और जलीय जीव–जंतुओं में बल्कि वनस्पतियों में भी कई परिवर्तन स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन से कई फूल समय से पहले ही खिलने लगे हैं वहीं कई वनस्पतियां और जीव अपनी मूल जगह से ऊपर अधिक ठंढ़े प्रदेशों की ओर से जाने लगे हैं। प्रवासी पक्षियों की आदतों के साथ–साथ स्थान परिवर्तन के समय में भी बदलाव आने लगा है। बढ़ते तापमान की वजह से कुछ प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर है, उनमें प्रमुख है–ध्रुवीय भालू, मानार्च तितली और बैबून आदि।

वैज्ञानिकों के अनुसार यह मौसमी उलटफेर बड़ी मुश्किल से हासिल की गई खाद्य सुरक्षा को खतरे में डाल सकता है। इसका एक अन्य खतरनाक नतीजा नई बीमारियों में बढ़ोत्तरी के रूप में भी सामने आएगा। अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण संगठन ग्रीन पीस की रिपोर्ट के अनुसार मलेरिया के फैलाव में अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, चीन, मिस्र और बंगला देश में मच्छरों की संख्या में भारी बढ़त लेकर 1970 के बाद इसके प्रकोप में चार गुना की बढ़ोतरी हो जाएगी।

पृथ्वी के निरंतर बढ़ते तापमान से होने वाले दुष्परिणामों पर हमें सहजता से यकीन नहीं होता क्योंकि अधिकतर परिणाम दूरगामी हैं। परंतु इतना स्पष्ट है कि ग्लोबल वार्मिंग की वजह से यह धरती आने वाली पीढ़ियों के लिए रहने लायक नहीं रहेगी। बढ़ते तापमान से श्वसन दर बढ़ जाती है। अन्य शारीरिक क्रियाएं तेज होने लगती हैं। नदियों, तालाबों के घाटों का क्षरण तेजी से होने लगता है।

लकड़ी के चीजें भी टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती हैं। पेंट और वार्निश उखड़ने लगती हैं। कागज पीला पड़ जाता है। गर्मी का आलम यह है कि अब देश के पहाड़ी पर्यटन स्थलों में भी पंखे चलने लगे है। प्रतिवर्ष पारा 50 डिग्री सेल्सियस से अधिक स्तर को पार करने लगा है। नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट में जान मेडाक्स के अनुसार पर्यावरण विनाश से पृथ्वी की जलवायु में होने वाले परिवर्तनों का दूरगामी प्रभाव पृथ्वी के घूमने के गति पर भी पड़ सकता है। हालांकि यह प्रभाव बहुत कम होगा। अधिक तापमान–वृद्धि दुनिया में नाटकीय बदलाव पैदा कर देगी। ध्रुवों पर जमी बर्फ पूरी तरह पिघल जाएगी और कई समुद्रतटीय इलाके जलमग्न हो जाएंगे। ब्रिटेन जैसे ठंढ़े देश में धूप में बाहर निकलना मुश्किल हो जाएगा। दुबई के पास ही पहाड़ियों में बर्फबारी होना और इंग्लैंड में लू चलना मौसम की तिरछी होती नजर का नमूना है। वर्ष भर बर्फ से ढके रहने वाले ध्रुव प्रदेशों पर भी गर्मी का साया लगा है, अब वहां घास उगने लगी है। राजस्थान के कुछ हिस्सों में आश्चर्यजनक रूप से बाढ़ का प्रकोप होने लगा है। उड़ीसा में लू चलने लगी है और तापमान अपनी सारी हदें भूलकर लोगों को झुलसा दे रहा है। कश्मीर में सूखा पड़ने लगा है।

हिमालय के पर्वतों पर लटकते ग्लेश्यिर और उनमें पैदा हुई कम से कम 22 झीलें देश के मैदानी इलाकों में कभी भी तबाही मचा सकती हैं। नेपाल, उतरांचल व चीन की सीमा पर तिब्बत स्थित पारच्छू कृत्रिम झीलों से भी लगातार खतरा बढ़ता जा रहा है। हिमाचल प्रदेश में पारच्छू नदी का जलस्तर बढ़ने पर सुमदोह से सुन्नी इलाके तक और सतलुज के किनारे के इलाके में बाढ़ की संभावना बढ़ गई है। ग्लोबल वार्मिंग व अन्य कई कारणों से यह झीलें सिर पर लटके हुए लाखों टन पानी की तरह बन गई है।

पर्यावरणविदों के अनुसार बढ़ता तापमान हमारे लिए समय रहते प्रकृति की एक चेतावनी है, यह तो अभी प्रकृति द्वारा बदला लेने की बहुत ही छोटी शुरूआत है। यदि अब भी पर्यावरण की दशा नहीं सुधारी गई तो आने वाले समय की हालत और भी बदतर हो जाएगी और गर्मी और भी बढ़ती जाएगी।

ऐसा नहीं है कि बढ़ते हुए तापमान पर लगाम नही लगाई जा सकती। पर पूरी दुनिया को एकजुट होकर जरूरी कदम उठाने होंगे। बढ़ते औद्योगीकरण और सुख–सुविधाएं जुटाने की होड़ पर अंकुश लगाकर ही बढ़ते तापमान पर काबू पाया जा सकता है। इसके लिए अनेक अंतराष्ट्रीय स्तर पर संधियां भी की गई हैं। अब आवश्यकता है इन संधियों को अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर पूरी ईमानदारी और निष्ठा से लागू किया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था इंटरगवर्नमेंट पैनल आन क्लाइमेट चेंज के अनुसार अगर कोशिश की जाए तो आने वाले 20 वर्षों में ग्रीन हाउस गैस के स्तर को नीचे किया जा सकता है। वैज्ञानिकों ने कई उपाय सुझाए हैं जो 2054 तक पर्यावरण को स्थिर कर सकते हैं जैसे कम ईंधन में ज्यादा चलने वाले या पेट्रोल और डीजल की जगह हाइड्रोजन से वाले वाहनों को उपयोग। यह तापमान बढ़ाने के लिए एक प्रमुख कारक कार्बनडाईआक्साइड पर काफी हद तक काबू पा सकता है। इसके अलावा ट्रापिकल डिफोरेस्टेशन को रोकना भी इन उपायों में शामिल है। इसका यह भी मानना है कि 2050 तक उत्सर्जित ग्रीन हाउस गैसों में आधे को भूमिगत स्टोर हाउसों में दफन कर दिया जाए। हवा, समुद्र, ज्वार और सौर–ऊर्जा जैसे विकल्पों का उपयोग अधिक मात्रा में किया जाए।

एक अनुमान के अनुसार एक वृक्ष अपने जीवनकाल में हमें फल, सब्जियों, दवाईयों, भूमि–कटाव को रोकने, ईंधन आदि के माध्यम से लाखों रुपयों का लाभ देता है। वृक्ष 6 लाख रुपये की आक्सीजन तथा 10 लाख रुपये का प्रदूषण रोकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था में एक वृक्ष को योगदान लगभग 32 लाख रुपये आंका गया है। लेकिन इतना ही काफी नहीं होगा। इस पर संतुष्ट होकर बैठ जाना उचित नहीं होगा। आज फिर से 1973 में चलाए गए चिपको आंदोलन की पुनरावृत्ति किए जाने की आवश्यकता है ताकि देश ही नहीं विश्व भी जंगल और इंसान के बीच के रिश्ते को करीब से महसूस कर सके।

पर्यावरण संरक्षण
प्रकृति ही एकमात्र विकल्प

करुण बहादुर सिंह

विश्वव्यापी समस्या बन चुका पर्यावरण प्रदूषण सर्वविदित् है। पर्यावरण का सीधा संबंध जीव समूहों के जीवन व विकास की प्रक्रिया से होता है। पिछले कई दशकों से हमारी पृथ्वी की जैव–विविधता पर खतरा मंडराता आ रहा है। पर्यावरण में तेजी से हो रहे बदलाव से प्रतिवर्ष हजारों प्रजातियां हमारी पृथ्वी से विलुप्त होती जा रही हैं। वैज्ञानिकों और विश्लेषकों का मानना है कि इसके पीछे कारण इन प्रजातियों के आस–पास के परिसीमन में होने वाला व्यापक परिवर्तन है। यह परिवर्तन विभिन्न रूपों में मानव, जीव–जंतुओं, पौधों, सूक्ष्म जीव समूहों और इनके गुणों को प्रभावित करता रहा है।

पर्यावरण प्रदूषण – बहुउद्देशीय परियोजनाएं, औद्योगिकीकरण, प्रौद्योगिकी विकास, सूचना प्रौद्योगिकी और संचार क्रांति के बावजूद विभिन्न चरणों की विकास प्रक्रिया का जहां मानव ने प्रत्यक्ष लाभ प्राप्त किया है, वहीं इनसे होने वाली अप्रत्यक्ष हानियों को दर किनार कर दिया गया। यही अप्रत्यक्ष हानियां अब प्रत्यक्ष रूप से जीवों को प्रभावित करने लगी हैं।

वैश्विक उष्णता – विभिन्न गैसों की वातावरण में निरंतर बढ़ रही सांद्रता के कारण पृथ्वी के तापमान में हो रही निरंतर वृद्धि से संपूर्ण विश्व पर हो रहे प्रभाव को विश्व पटल पर वैश्विक उष्णता के रूप में जाना जाता है। वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार विगत एक शताब्दी में पृथ्वी के तापमान में 1 डिग्री फारेनहाइट की वृद्धि दर्ज की गई है। निरंतर ताप में वृद्धि के चलते अनुमानतः 2050 तक पृथ्वी के तापमान में 5°C तक की वृद्धि संभावित है। एक आंकलन के अनुसार 1861 के बाद से धरती की सतह का औसत तापमान लगातार बढ़ रहा है। भविष्य में तापमान में हो रही निरंतर वृद्धि से पृथ्वी पर जन–जीवन अस्त–व्यस्त हो जाएगा। जिनसे समुद्र के जल स्तर में भारी वृद्धि होगी और समुद्र तटीय इलाके जल मग्न हो जाएंगे।

एक शोध के अनुसार जर्मन वैज्ञानिकों का यह मानना है कि वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धि से जीनोम प्रणाली प्रभावित होगी। भविष्य में जन्म लेने वाले बच्चों में बालकों की संख्या में वृद्धि होने व्यापक संभावना है। लिंग निर्धारण प्रक्रिया में भाग लेने वाले दो गुण–सूत्र 'एक्स तथा वाई' होते हैं। एक्स गुण गुण सूत्र महिला लिंग का निर्धारण करता है। जो अधिक ऊष्मा में संचरण नहीं कर सकता। जबकि वाई गुण सूत्र जो पुरुष लिंग का निर्धारण करता है उसमें ऊष्मा सहन करने की अधिक क्षमता होती है। जिसके चलते संपूर्ण विश्व में समान लिंग अनुपात की स्थिति में व्यापक परिवर्तन आ सकता है। यूं तो वैश्विक उष्णता का मुख्य कारण वायुमंडल में कार्बनडायक्साईड की मात्रा में निरंतर हो रही वृद्धि है। वर्तमान विकास की इस अंधी दौड़ में औद्योगिक क्षेत्र से निष्कार्षित कार्बन टेट्रा–क्लोरीन, मिथाइल क्लोरोफार्म, हाईड्रोक्लो–फ्लोरो कार्बन पदार्थयुक्त अन्य क्लोरीन, मीथेन और नाईट्रोजन ऑक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैस का वातावरण में अपना प्रभाव स्थापित कर वैश्विक उष्णता उत्पन्न करती है जिसका प्रभाव संपूर्ण विश्व पर पड़ रहा है।

अतः वैश्विक उष्णता मात्र एक कोरी कल्पना न रहकर भविष्य की एक भयावह हकीकत की ओर संकेत कर रही है।

अम्ल वर्षा – अम्ल वर्षा का निर्माण प्रमुख रूप से यातायात तथा औद्योगिक उपकरणों से निष्कार्षित होने वाली सल्फरडाईआक्साइड, कार्बन टेट्राक्लोरीन और नाइट्रस आक्साइड गैसें वायुमंडल में स्थित जल वाष्पों से प्रतिक्रिया कर के नाइट्रिक (NHO_3) व सल्फ्यूरिक अम्ल (H_4SO_4) बनाती है। यही अम्ल पृथ्वी पर जब बूंद व अम्ल वर्षा के रूप में वापस आती है पृथ्वी पर प्रतिक्रिया कर प्राणियों के लिए घातक सिद्ध होती है।

ओजोन परत का क्षरण – पृथ्वी के रक्षा कवच के रूप में विख्यात यह परत सूर्य से पृथ्वी पर आने वाली 280 से 320 नैनोमीटर तरंगदैर्ध्य वाली पैराबैंगनी अत्याधिक हानिकारक किरणों को पृथ्वी तल तक पहुंचने से रोकती है। इसकी स्थिति क्षोभ व समताप मंडल के बीच तथा यह सर्वाधिक मात्रा में 20 से 25 कि.मी. की ऊंचाई पर स्थित है। आज इस जीवनदायक ओजोन परत में छिद्र होने के विषय विश्व भर के लिए चिंता का विषय है। विभिन्न प्रकार की गैसों का असंतुलन व क्लोरो फ्लोरो कार्बन यौगिकों की ओजोन परत के क्षरण में मुख्य भूमिका रही है। वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार क्लोरो फ्लोरो कार्बन यौगिक का औसत जीवन काल 75 से 110 वर्षों तक होता है। इस प्रकार प्रत्येक क्लोरीन परमाणु अपने नियत काल में 1,00,000 ओजोन अणुओं को विखंडित कर देते हैं। यह प्रक्रिया चेन रिएक्शन के रूप में चलती रहती है, और क्लोरीन परमाणु ओजोन अणुओं को लगातार तोड़ते रहते हैं।

ओजोन परत के क्षरण से पृथ्वी तल पर सूर्य से पैराबैंगनी किरणें सीधे पहुंच जाएंगी। जिसके प्रभाव से मेलानोमा (त्वचा कैंसर, सफेद त्वचा वाले लोगों पर प्रभाव) मानव शरीर के रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना, बीजों के उत्पादन में ह्रास, पौधों की वृद्धि पर नाकारात्मक प्रभाव आदि के होने की विकराल संभावना है।

समुद्र जल स्तर में वृद्धि – वैश्विक ताप में निरंतर वृद्धि से ग्लेशियर व बड़े हिम खंड पिघलकर समुद्रीय जल स्तर में भारी वृद्धि कर रहे हैं। एक आंकलन के अनुसार विगत सदी में वैश्विक ताप में निरंतर वृद्धि के कारण पिघले हिम खंड व ग्लेशियर के कारण समुद्र तल में 4 से 8 इंच की बढ़ोतरी दर्ज की गई है। ब्रिटेन में आयोजित एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'हैडले सेंटर फॉर क्लाइमेट चेंज' वर्ष 1999 में वैज्ञानिकों ने अपनी एक रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया कि 21वीं सदी शताब्दी के अंत तक धरती का औसत तापमान 6°C तक बढ़ जाएगा। तापमान में बढ़ोत्तरी

के चलते 2050–60 तक समुद्रीय जल स्तर में वृद्धि के कारण तटवर्ती करोड़ों लोगों को बेघर होना पड़ सकता है। निचले व छोटे द्वीप समूह डूब सकते है। यह मात्र एक परिकल्पना नहीं बल्कि भविष्य की एक भयावह स्थिति है।

जलवायु परिवर्तन – पृथ्वी पर वैश्विक ताप वृद्धि का प्रभाव जलवायु पर अत्यधिक पड़ता है। जिसके कारण जलवायु परिवर्तित हो गई है। सामान्य रूप से जलवायु परिवर्तन से तात्पर्य है जलवायु का सामान्य न होना। गर्मी के मौसम में सामान्य से अधिक या कम गर्मी का पड़ना, वर्षा का सामान्य से अधिक या कम समय पर न होना। शीत ऋतु में भी जाड़ा सामान्य के बजाय अधिक या कम व सामान्य न होकर देर से शुरू होना आदि। जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव पादपों, जीव–जंतुओं और कृषि पर पड़ता है। जिसके कृषि की पैदावार सामान्य से कम ह्रासात्मक होती है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु आयोजित सम्मेलन – पर्यावरण में निरंतर हो रहे ह्रास से बुद्धिजीवी वर्गों में यह चिंता का विषय बना हुआ है। इसी के तहत पर्यावरण सुरक्षा हेतु महत्वपूर्ण पर्यावरण संधियां संपन्न हुई हैं। जो निम्नवत हैः

मांट्रियल प्रोटोकोल – सितंबर, 1987, से 1 जनवरी, 1989; मुख्य उद्देश्य–● क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन पर प्रभावी ढंग से रोक।

हेलसिंकी प्रोटोकोल – 1989 मुख्य उद्देश्य–● ओजोन परत के क्षरण को रोकना व पूर्ण संरक्षण प्रदान करना। ● क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उत्सर्जन को वर्ष 2000 तक बंद कर देना।

लंदन प्रोटोकोल – अगस्त 1990; देशों की संख्या–92; मुख्य उद्देश्य–● संधि हस्ताक्षरित देशों द्वारा वर्ष 2000 तक फ्लोरो कार्बन का उत्पादन बंद करने का निर्णय। ● अमेरिका द्वारा 1999 के अंत तक क्लोरो फ्लोरो कार्बन के उत्पादन को पूर्णत बंद करने का आश्वासन।

कोपेनहेगन सम्मेलन – 1992; मुख्य उद्देश्य–● हस्ताक्षरित देशों द्वारा आम सहमति से 1996 तक क्लोरो फ्लोरो कार्बन तथा कार्बन टेट्राक्लोराइड का बंद करना। ● 2000 तक हैलोन्स व 2030 तक हाइड्रोक्लोरो कार्बन के उत्पादन पर पूर्णतः रोक लगना।

रियो–पृथ्वी सम्मेलन – 1992; मुख्य उद्देश्य; ● स्वास्थ्य व पर्यावरण में हो रही गिरावट को रोकना। ● जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारकों का पता कर समस्या के निराकरण हेतु मुख्य भूमिका का निर्वाहन करना ● जैव विविधता को पारिस्थितिकी के अनुकूल बनाना।

क्योटो सम्मेलन – 1997 प्रभावी हुआ–16 फरवरी, 2005; हस्ताक्षरित देशों की संख्या–180; मुख्य उद्देश्य ● वर्ष 1990 के स्तर की तुलना में 5.2 प्रतिशत की ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी नियत अवधि वर्ष 2008–12 के मध्य संभव करना।

एम्सटर्डम पर्यावरण सम्मेलन – 10–11 जुलाई, 2001; मुख्य उद्देश्य–● चिंता व्यक्त की गई कि पृथ्वी के तापमान में निरंतर वृद्धि से गरीब विकासशील राष्ट्र अनाज उत्पादन में भारी कम हो सकती है। ● यह रिपोर्ट आस्ट्रेलिया की संस्था 'इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एप्लाइड सिस्टम एनालिसिस द्वारा जारी किया गया।

मराकस सम्मेलन – 9 नवंबर, 2001; मुख्य उद्देश्य; ● पर्यावरण संरक्षण को नई दिशा देने वाली ऐतिहासिक 'क्योटो संधि' को स्वीकार किया गया है। ● जी–8 के औद्योगिक देशों ने भी अपना समझौते के प्रति साकारात्मक दृष्टिकोण दिखाया। ● सहयोगी देशों द्वारा 2008–10 तक पृथ्वी का तापमान को निरंतर बढ़ाने वाली गैसों में 8 प्रतिशत की कमी लाना। ● दंड का प्रावधान–उल्लंघनकर्ता राष्ट्र दंड भरेगा यह राशि 'स्वच्छ विकास कोष' में जमा हो जाएगी।

पर्यावरण संरक्षण – ● औद्योगिक इकाईयों को धुआं व कचरा फिल्टर कर वातावरण व नदी नालों में छोड़ना चाहिए। ● उपयोग से बाहर व खराब बैट्री को खुले वातावरण में निष्क्रिय न करें, इसमें प्रयुक्त होने वाले लेड व रासायनिक अपघटक भूमि तथा वातावरण को प्रदूषित करते हैं। ● सूचना क्रांति के इस दौर में इलेक्ट्रानिक वेस्ट का अधिक होना एक आम बात है किंतु इलेक्ट्रॉनिक डिवाइस के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले कम्पोनेंट, इलेक्ट्रानिक डिवाइस के अनुप्रयोग से हटने पर वातावरण के अनुकूल न होने के कारण वातावरण में प्रदूषण फैलाते हैं

उदाहरणार्थ– वेस्ट कंप्यूटर के कैथोड ट्यूब में केडियम सर्किट बोर्ड में लेड, मॉनीटर व स्विच में पारा कंप्यूटर बैट्री में कैडियम और इलेक्ट्रिक डिवाइस के रूप में प्रयोग किये जाने वाले कंडेंसर एवं ट्रांसफार्मर में पॉली क्लोनीकृत बॉय फिनाइल आदि वातावरण के प्रतिकूल हैं। ● लुप्त प्रायः जीव जंतुओं का संरक्षण आवश्यक है। जिससे परिस्थितिकी तंत्र सुचारू रूप में कार्य करता रहे। ● पर्यावरण को अनुकूलता प्रदान करने वाले पेड़–पौधों को विशेष संरक्षण प्रदान किया जाए। पेड़–पौधे ही ग्रीन हाउस को कम करने की क्षमता रखते हैं।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004 – राष्ट्रीय पर्यावरण नीति भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48(ए) तथा 48 (ए)–जी में उद्धृत पर्यावरण संरक्षण व संवर्धन और वन व वन जीवों की रक्षा तथा इनके प्रति हमारी प्रतिबद्धता को दोहराता है।

पर्यावरण को पारिस्थितिकी तंत्र के अनुकूल बनाए रखने की नैतिक जिम्मेदारी सरकार की ही नहीं अपितु इसका उत्तरदायित्व राष्ट्र के सभी नागरिकों पर भी है। ● पर्यावरण सुरक्षा हेतु संसाधनों में वृद्धि। ● पर्यावरणीय संसाधनों के अनुप्रयोग में उच्च क्षमता विकास। ● पर्यावरणीय प्रशासन व उसका कार्य। ● सामाजिक व आर्थिक विकास के साथ पर्यावरण को परिस्थितिकी तंत्र के अनुकूल बनाए रखना। ● अमूल्य पर्यावरण संसाधनों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करना।

मानव प्रगति की अंधी दौड़ में आगे रहने के लिए प्रकृति सदैव प्रभावित करती रही है। मानव विकास की दौड़ में यह भूल गया कि पर्यावरण का सीधा संबंध मानव जीवन से तथा मानव जीवन का सीधा संबंध पर्यावरण से है। दोनों ही एक दूसरे के पर्याय हैं। पर्यावरण में होने वाली समस्त घटनाऐं किसी न किसी रूप में हमें सदैव प्रभावित करती रही हैं। हम स्पष्ट शब्दों में यह कह सकते हैं कि जीवन के लिए प्रकृति ही एकमात्र विकल्प है। अतः पर्यावरण संरक्षण ही मानव जीवन के लिए सबसे उपयुक्त उपाय है।

(स्वतंत्र पत्रकार)

पर्यावरण का आवरण

भीष्मदेव महतो

पर्यावरण हेतु, पर्यावरण के बारे में, पर्यावरण के माध्यम से जिस शिक्षा को जन–जन तक पहुंचाने की प्रक्रिया पूरी की जाती है, उस पर्यावरण को अध्ययन के माध्यम के रूप में उपयोग करने से होता है। इस अर्थ में पर्यावरण क्षेत्र की व्यापकता का अंदाजा लगाया जा सकता है कि इसमें महाकवि कालिदास, वड्र्सवर्थ एवं अन्य कवियों द्वारा प्रकृति प्रशंसा, वैज्ञानिकों व विद्वानों द्वारा भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण के बारे में की गई खोजें, वातावरण का सौन्दर्य, शहरी एवं ग्रामीण नियोजन तथा हमारे साधनों के संरक्षण के बारे में जो कुछ हम कहते हैं, करते हैं– शामिल है। यदि हम इसके पूर्व के जिक्र और कार्य का अध्ययन करें, तो स्पष्ट हो जाता है, कि विश्व का हर देश पर्यावरण के दिनों–दिन प्रदूषित होने से उत्पन्न होने वाली विभिषिकाओं से चिंतित है। इसीलिए काफी पहले से इस दिशा में सावधानी बरतने के उपायों पर अध्ययन और कार्य जारी है। 1972 में इंग्लैंड में पर्यावरण शिक्षा पर राष्ट्रीय संघ का निर्माण हुआ उसी साल अमेरिका में एन्वायरमेन्ट प्रोटेक्शन एण्ड कंजरवेशन पर अधिनियम बना लेकिन इससे पूर्व भी कवियों, प्रकृतिवादियों शहर एवं देशीय नियोजकों द्वारा पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में कार्य जारी थे। संप्रति, यह प्रति व्यक्ति एवं विशिष्ट समूहों, से राष्ट्रों तथा यूनेस्को एवं प्रकृति संरक्षण के अन्तर्राष्ट्रीय संघों की और इस आशा से परिवर्तित हो गया है, कि लोग यह जानेंगे कि पर्यावरण प्रदूषण जनसंख्या विस्फोट तथा साधन ह्रास कितना संकटदायी हो सकता है। आज यह समस्या इतनी विकराल हो गई है कि सम्पूर्ण मानव समाज इससे अभिशप्त है। इसीलिए पर्यावरणविद एवं वैज्ञानिक इसके त्वरित निदान की दिशा में काफी प्रयत्नशील है लेकिन जब तक इस दिशा जनसहयोग नहीं होगा, तब–तक समस्या के निदान की बात सोचना भी बेकार है। पर्यावरण प्रदूषण के पीछे सबसे बड़ी समस्या है, देखते–देखते प्राकृतिक की शोभा जंगलों का उजड़ते जाना। जब कि आज के औद्योगिक युग में सबसे जरूरी यह है कि जंगलों का रख–रखाव सुनिश्चित किया जाये और अब से पूर्व हुई प्राकृतिक संपदा की बर्बादी को दूर करने के लिए वृक्षारोपण कार्यक्रम पूरे विश्व में युद्धस्तर पर चलाया जाये। हमारे देश में तो आदिकाल से वृक्षारोपण जैसे महायज्ञ के लिए ऋषियों–मुनियों के आश्रम जंगल में होते ही थे साथ में आश्रम के चारों ओर वहां अध्ययनरत मानसिक थकान को दूर करने के लिए छात्र लगातार वृक्षारोपण जैसे पुनीत कार्य में जुटे रहते थे। इससे उन्हें दो फायदे होते थे– एक उनकी मानसिक थकान दूर हो जाती थी दूसरे, वृक्षारोपण से आश्रम के चारों तरफ का वातावरण शुद्ध रहता था, जिससे उनके स्वास्थ्य की लगातार रक्षा होती रहती थी, महाकवि कालिदास अपने प्रमुख ग्रंथ 'अभिज्ञान शाकुंतलम' में इसका बहुत ही सुंदर वर्णन किया है– कि महर्षि कण्व के शिष्य वृक्षारोपण में तल्लीन रहा करते थे। शकुंतला की विदाई के समय इन्हीं वृक्षों के झरते पत्ते और इनमें लगते नये–नये फूलों का सौन्दर्य बरबस व्यक्ति का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित कर लेते थे।

वृक्ष मानव– जीवन की आधारशिला है। इनके बगैर जीवन में सिर्फ शून्यता है। आज के भागमभाग जीवन में विगत वर्षों से जिस तीव्र गति से कटाई हुई है। उससे आज मानवीय जीवन खतरे की गिरफ्त में आ गया है। प्रकृति का संतुलन बिगड़ सा गया है। यदि इस पर प्रतिबंध नहीं लगा तो वह दिन दूर नहीं जब पूरे विश्व का वातावरण इतना विषाक्त हो जायेगा कि मनुष्य और जीव–जंतुओं का जीना दूभर हो जायेगा। अभी भी स्थिति यह है, कि प्रकृति में सांस लेना मुश्किल– सा हो गया है। यदि यही हालत रही तो वह दिनदूर नहीं, जब हमारा मानसिक, सामाजिक और आत्मिक विकास थम जायेगा। वन हमारे जीवन के पर्याय है। इनके अस्तित्व को मिटने से बचाव का एकमेव रास्ता यही है, की आज हर व्यक्ति यह संकल्प ले कि उसे अपने जीवन में कम से कम एक या दो वृक्ष जरूर लगाना है। ये वन मानव के लिए इतना उपयोगी है कि कभी इनसे ईंधन की आपूर्ति होती है, तो कभी इनकी लकड़ियों–बांस और घास–फूस आदि से सर्वाधिक जीवनोपयोगी कागज का निर्माण होता है। किसी–किसी देश में इन वनों की लकड़ियों तो आवास की समस्या हल करती हैं। इतना ही नहीं ये वन तीव्र वर्षा में भूमि की तीव्र कटाव को रोकते हैं और साथ–ही वर्षा में संतुलन बनाये रखते हैं। इससे हमारी कृषि व्यवस्था भी संतुलित रहती है। वन बाढ़ के प्रकोप को रोकते हैं, तो रेत कणों की वृद्धि पर अंकुश लगाकर भूमि का संतुलन भी ठीक रखते हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ तो वृक्षों–वनों की आवश्यकता और बढ़ गयी है। बेगार लोगों को इनसे अधिक रोजगार मुहैया होंगे और उत्पादन भी प्रभावित होगा। सन् 1952 में भारत सरकार ने 'नयी वन नीति' की घोषणा कर वन महोत्सव को प्रेरित किया। लेकिन बाद के वर्षों में इसे हमने कारगर बनाने की जगह ज्यादातर नजरअंदाज ही किया। जबकि सबको मालूम है, कि वन संपदा हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी है। इनसे हमें जड़ी–बूटियां तो उपलब्ध होती ही हैं, पर्यटन को भी विशेष बढ़ावा मिलता है। जंगली पशु–पक्षियों का संरक्षण इन वनों में जितनी बेहतरी से संभव है, और कहीं नहीं। वनों पर ही आश्रित हैं सारे वन्य जीव। वन्य जीव भी हमारे लिए काफी उपयोगी है। इनकी खाल–बाल आदि से अनेकानेक जीवनोपयोगी वस्तुएं निर्मित होती हैं। जाहिर है– यदि वन सुरक्षित नहीं होंगे तो ये वन्य जन्तु भी खतरे में पड़ जाएंगे और हम बहुत सारे

जीवनोपयोगी वस्तुओं से वंचित रह जायेंगे। आज पूरे विश्व में यह भयानकता पसरी है कि मनुष्य–मनुष्य का शोषण कर रहा है और राष्ट्रों के शोषण में लगे हुए हैं। पर बात इतने तक ही सीमित नहीं है जब मनुष्य अपनी पिपासा शांत करने के लिए प्रकृति का शोषण करने से भी बाज नहीं आता। जबकि वैज्ञानिकों की धारणा है, कि प्रकृति में कोई गंदगी नहीं है, प्रकृति में एक तरह से संतुलन ही रहा है। प्रकृति में ब्रह्म–विष्णु–महेश के कार्यकलाप लगातार चलते रहते हैं। पानी प्रकृति जनन–पालन– पोषण और संहार तीनों कार्यों का इसका उस बारीकी के साथ निर्वाह करती है कि उसके संतुलन में कोई अव्यवस्था न आ जाये। मनुष्य के हस्तक्षेप ने प्रकृति को काफी प्रभावित और विद्रूप किया है। मानव द्वारा जारी औद्योगिक विकास से प्रकृति में तेजी से प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। वातावरण में ऊर्जा और उष्णता दिनों–दिन बढ़ रही है। इतना ही नहीं, ज्वलनशील वस्तुएं जब पूरी नहीं जल पाती तो उनके धीरे–धीरे सुलगने से निकली कार्बनडाइऑक्साइड कार्बनमोनोऑक्साइड गैसें बढ़ते–बढ़ते प्रकृति को विषाक्त कर देती हैं। सुख–सुविधा हेतु उपयुक्त मानव निर्मित वाहनों के धुएं से प्रकृति हर पल विषाक्त होती रहती है। एक मोटर वाहन के 160 किलोमीटर चलने से इतनी ऑक्सीजन खर्च होती है, जितनी एक व्यक्ति 1 साल में अपने अंदर सांस के रूप में लेता है। यह प्रदूषण प्रकृति में रोजाना ट्रेन, हवाई जहाज, तेल शोधक आदि कारखाने और मिलों से निकले वर्ज्य पदार्थों से बढ़ता ही जा रहा है। अभी कुछ ही साल पहले की बात है 1968 में ब्रिटेन में लाल धूल आकाश से गिरने लगी थी जो सहारा रेगिस्तान से उड़कर आयी थी। जब उत्तरी अफ्रीका में टैंकों का युद्ध चल रहा था तब वहां से उड़ी धूल कैरीबियन समुद्र तक पहुंच गयी। घनी आबादी में कार्बन मोनोऑक्साइड के कारण वायुमंडल 5 से 10 प्रतिशत ऑक्सीजन कम हो जाती है जबकि शरीर के ऊतकों को 25 प्रतिशत ऑक्सीजन की सर्वदा जरूरत पड़ती है। इतना ही नहीं, ऑक्सीजन की तुलना में कार्बनमोनोऑक्साइड लाल रुधिर कोशिकाओं के साथ बहुत शीघ्र मिल जाती है जिससे ये कोशिकाएं ऑक्सीजन को पूरी मात्रा में संभालने में असमर्थ हो जाती है। यदि यही हालत बरकरार रही तो वैज्ञानिकों का कहना है कि आगामी 30 वर्षों में जीवन मंडल यानी बायोस्फीयर ही समाप्त हो जायेगा। इतनी सारी भावी विषाक्त संभावनाएं जहां हमें हर पल गिरफ्त में लेती जा रही है, वहां भला वनों और पेड़ों की तीव्र गति से हो रही कटाई को हम क्यों नहीं रोकते जो वन और पेड़ मानव द्वारा व्यापित प्रदूषण की हल पल शुद्धि किया करते हैं। जाहिर है कि पेड़–पौधे मानव या उसके निर्मित साधनों से छोड़ी गयी कार्बनडॉईऑसाइड और कार्बनमोनोऑक्साइड को अपनी श्वसन प्रक्रिया में ग्रहण करते हैं और बदले में हमें जीवनोपयोगी ऑक्सीजन देते हैं। वायुमंडल को लगातार शुद्ध करते रहते हैं। इतना ही नहीं जलीय पौधे जल में रहकर भी प्रकृति को शुद्ध करते रहते हैं। ऐसे में वनों पर आयी कटाव संबंधी विपदा को दूर करना तो जरूरी है ही, हमने आज तक प्रकृति को जो क्षति पहुंचाई उस गलती के सुधार के लिए वृक्षारोपण कर प्रकृति के संतुलन को बनाये रखने में योगदान करना चाहिए। सरकार आज इसे प्रोत्साहन दे रही है लेकिन यदि जन–जन तक इस संदर्भ में जागरण नहीं आयेगा, तो वह दिन दूर नहीं जब हम सभी सिर्फ प्रदूषित वातावरण की ही गिरफ्त में होंगे।

(लेखक ग्रीन फील्ड इंडिया के अध्यक्ष सह–प्रबंधक निदेशक हैं।)

जनजातीय क्षेत्रों में लघु पनबिजली परियोजनाएं

केंद्रीय अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्री विलास मुत्तेमवार ने बताया कि आंध्र प्रदेश राज्य सरकार ने राज्य के जनजातीय क्षेत्रों में लघु पनबिजली परियोजनाओं की स्थापना के लिए कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत एपी ट्राईबल पावर कंपनी लिमिटेड (एपी ट्रिपको) की स्थापना की है। ए पी ट्रिपको द्वारा ऐसी परियोजनाओं के लिए तकनीकी, वित्तीय और संभार संबंध सुगमता–प्रदाता के रूप में कार्य किया जाना है। ये परियोजनाएं जो समुदाय स्वामित्व वाली और समुदाय प्रबंध वाली होती हैं, स्थानीय महिला समूहों को सौंपी जानी है। ऐसी परियोजनाओं से लाभ को स्थानीय जनजातीय लोगों की बेहतरी और विकास के लिए खर्च किया जाना है।

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड-4, तल-7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की स्थिति सरकारी प्रयास

अखिलेश आर्येन्दु

भारत के ग्रामीण इलाकों में लोगों को जिन तमाम समस्याओं से रू–ब–रू होना पड़ रहा है उसमें शुद्ध पेयजल की समस्या भी एक है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, बिहार, दिल्ली और गुजरात के ग्रामीण इलाकों में शुद्ध पीने का पानी एक समस्या बन गई है। गर्मियों में इन राज्यों में स्थिति और भी खराब हो जाती है। इसलिए केन्द्र और राज्य सरकारें इस स्थिति से निपटने के लिए व्यापक पैमाने पर समस्या के समाधान के लिए कार्य कर रही हैं। सरकारी आंकड़े के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सप्लाई 95 प्रतिशत तक पहुंच गई है, बावजूद इसके राजस्थान के 5,368 बस्तियों को पानी नहीं मिल पाता है। पेयजल की समस्या केवल सूखे, या भूजल स्तर के बहुत नीचे चले जाने के कारण नहीं है, बल्कि 2,17 लाख परिवारों को शुद्ध पानी इसलिए नहीं मिल पाता कि पानी में संखिया, नाइट्रेट, फ्लूराइड और आयरन लवणता की मात्रा बहुत अधिक होती है। पानी में संखिया की बढ़ी मात्रा बिहार, बंगाल और पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में पाई गई है। वहीं पर आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान, व गुजरात के गांवों में नाइट्रेट, फ्लूराइड और आयरन पानी में मिला हुआ होता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में पानी की समस्या दो स्तरों पर है। इसमें पानी की समुचित उपलब्धता और दूसरी ओर पीने योग्य पानी की गुणवत्ता। सरकारी आंकड़ों (जल मंत्रालय) के अनुसार वर्ष 2002 में देश के 14.22 लाख बस्तियों में से 15,798 बस्तियों को ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम के अंतर्गत लाए जाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए दसवीं योजना में 8.150 करोड़ रुपए जो परिव्यय के निर्धारित थे, को बढ़ाकर 13,245 करोड़ कर दिया गया। इसके अलावा ग्रामीण पेयजल सप्लाई कार्यक्रम के अंतर्गत विश्व बैंक की सहायता से स्वजल परियोजना के माध्यम से उत्तर प्रदेश और उत्तरांचल के 1200 गांवों में पेयजल सप्लाई किया गया।

विश्व का भारत सबसे बड़ा कृषि प्रधान देश है। यहां की 80 प्रतिशत कृषि वर्षा के जल के सहारे होती है। उसी तरह 80 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या अपनी घरेलू जल सप्लाई का प्रबंध स्वयं करती है। भारत की भूजल की स्थिति दूसरे देशों से अलग है। विश्व में भारत भूजल का सबसे बड़ा प्रयोक्ता है (200 बीसीएम) उसके बाद अमेरिका का स्थान है। लेकिन देश के कुछ राज्यों में भी जल का दोहन बहुत अधिक होने से इन राज्यों में पेयजल की कृत्रिम समस्या पैदा हो गई है। ये राज्य हैं– हरियाणा, पंजाब, गुजरात, राजस्थान और तमिलनाडु। ये राज्य नाजुक जोन में माने जाने लगे हैं। शुद्ध पेयजल इन राज्यों में मिलना एक समस्या बन गई है। इन राज्यों में भूजल का दोहन कृषि के लिए जरूरत से अधिक किया गया।

आजाद भारत में जल ही एक ऐसा आधारभूत आवश्यक वस्तु है जिस पर सार्वजनिक क्षेत्र का सबसे अधिक पूंजी लगाई गई। आजादी के बाद से 4500 से अधिक बड़ी और छोटी परियोजनाएं प्रारम्भ की गईं। इनमें से अभी एक–तिहाई परियोजनाएं अधूरी पड़ी, पूर्ण होने की बाट जोह रही हैं। इसके वजह से पारम्परिक जलस्रोतों का दोहन तेजी से बढ़ा और जिससे देश के हजारों की संख्या में जलस्रोत सूख गए। जिससे पीने और कृषि के लिए पानी का जबरदस्त संकट पैदा हो गया है।

देश में 1991 में भूमंडलीकरण और उदारीकरण के तहत सार्वजनिक और सरकारी क्षेत्र को निजी हाथों में सौपने के लिए कानून में परिवर्तन किए गए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पूंजीनिवेश के लिए खुली छूट दी गई। इन्हीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों में कोका कोला, पेप्सी, एक्वाफिना और किन्ले ने बोतलबंद पानी का धंधा शुरू किया। देश के विभिन्न हिस्सों में कोक और पेप्सी ने 'कोल्ड ड्रिंक्स' बनाने के प्लांट लगाए। इससे भी जल का दोहन बड़े पैमाने पर किए गए। इससे देश के आधे से अधिक पारम्परिक जलस्रोत (कुंए, बावड़ियां, तालाब और चश्में) सूख गए।

गांवों में जल संकट लगातार क्यों बढ़ता जा रहा है, इसका एक कारण नहीं है। लेकिन बढ़ता पानी का व्यापारीकरण इसका एक प्रमुख कारण है। एक आंकड़े के अनुसार भारत में प्रतिदिन दस करोड़ पानी की बोतलें बिक्री की जाती हैं। इसी तरह पांच करोड़ बोतलें कोल्ड ड्रिंक्स की बिकती हैं– यानी रोज़ाना पन्द्रह करोड़ पानी की बोतलें बिक्री की जाती हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रतिदिन दस अरब मिली लीटर पानी विभिन्न जलस्रोतों और भूजल के दोहन से निकाला जा रहा है। इससे उन क्षेत्रों में भी पानी का संकट पैदा हो गया है, जहां पानी इफरात रहता था। हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, पंजाब, महाराष्ट्र और कर्नाटक में पिछले पन्द्रह–बीस सालों से भूजल का दोहन अतिशय होने से हजारों की संख्या में पारंपरिक जलस्रोत सूख गए हैं या सूखने के कगार पर हैं।

भारत में जल आपूर्ति और प्रबंधन आजादी के बाद सरकार के हाथों में रहा है। इससे गांवों में जो जल संचय के सार्वजनिक प्रयास और तरीके थे, धीरे–धीरे खत्म होते गए। पानी का निजीकरण कर देने के बाद जल संचय, संरक्षण और प्रबंधन के सार्वजनिक प्रयासों में और भी कमी आई। इससे पारम्परिक जल स्रोतों की हालत और भी खराब हो गई। हर साल देश की अधिकांश जनसंख्या को पानी की किल्लत से दो–चार होना पड़ता है।

स्वतंत्रता के बाद देश के सिंचित भू–भाग में जबरदस्त बढ़ोतरी हुई है। 1951 में 226 लाख हेक्टेयर भू–भाग सिंचित था वह सन् 2000 तक बढ़कर 10 हजार करोड़ हेक्टेयर से अधिक हो गया। जो सरकारी परियोजनाएं प्रारंभ की गईं, उनमें से बड़ी परियोजनाएं तो पूरी हुई, लेकिन मझोली परियोजनाएं आधी से अधिक अधूरी पड़ी रहीं। इससे पारंपरिक जल स्रोतों पर निर्भरता बढ़ी। लेकिन इनका रख–रखाव ठीक से न होने से ये कुछ वर्षों में सूख गए।

इन राज्यों के आधे से अधिक कुंए व बावड़ियां सूख गई हैं। भूजल स्तर 30 फुट तक नीचे चला गया है। इन राज्यों में वर्षा कम होने से हर

साल गर्मियों में पेयजल की समस्या गहरी हो जाती है। राज्य सरकारें इस समस्या से निपटने के लिए 'स्वजल धारा' योजना के अतंर्गत पानी की आपूर्ति के लिए प्रयासरत हैं, लेकिन इससे समस्या हल होते नहीं दिखाई देती। राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन के रपटों के अनुसार वर्ष 2003–04 के दौरान 111051 गांवों/बस्तियों के कुल लक्ष्य की तुलना में 34256 गांवों/बस्तियों में सुरक्षित पेयजल आपूर्ति की व्यवस्था की गई। दूर–दराज के गांवों/बस्तियों में पेयजल पहुंचाना बड़ी समस्या थी इसलिए वहां तक पेयजल नहीं पहुंचाया जा सका। केन्द्र सरकार के आंकड़े के अनुसार (रिपोर्टों के अनुसार) दसवीं योजना (2004–05) में त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम लागू किया गया। केन्द्र सरकार ने इसके बाबत 3148 करोड़ रुपए का प्रावधान किया। वहीं ग्रामीण जल आपूर्ति क्षेत्र में सन् 2003–04 के मुकाबले 2004–05 में 563 करोड़ रुपए ज्यादा निर्धारित किए गए। इसके अंतर्गत "कवर न हुए" 40061 गांवों/बस्तियों में को कवर करने की योजना बनाई गई। इससे शुद्ध पेयजल पहुंचाने की योजना का काफी हिस्से का कार्यान्वयन हुआ।

प्रधानमंत्री ने 'स्वजल धारा' योजना का आरंभ किया। यह योजना दूसरी सभी योजनाओं से अधिक कारगर और पारदर्शी है। इसके अंतर्गत पंचायतों/समितियों को जल आपूर्ति और स्वच्छता स्कीमों की योजना तैयार करने, कार्यान्वित, संचालित, अनुरक्षण और प्रबंधन को अधिकार दिया गया। इसमें 90 प्रतिशत केन्द्र सरकार देगी और 10 प्रतिशत लाभप्राप्तकर्ता (पंचायतों/समितियों) को लगाने का प्रावधान है।

केन्द्र के अलावा राज्य सरकारें स्वच्छ जल पेय योजना कार्यक्रम के जरिए जरूरतमंद गांवों/समितियों/बस्तियों को जल–आपूर्ति का कार्यक्रम लागू की हुई है। इन सब के बावजूद अधिकांश राज्यों में ग्रामीण जल आपूर्ति का संचालन और अनुरक्षण संतोषजनक नहीं है। सर्वेक्षण के अनुसार पेयजल योजनाओं को उचित कार्यान्वयन के लिए युवकों एवं महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाया जाना चाहिए। कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, केरल व तमिलनाडु में ओ एंड एम की जिम्मेदारी पंचायत राज्य संस्थाओं को हस्तांतरित कर दी है। इससे यहां पर बेहतर परिणाम देखने में आए हैं। देश के बाकी पेयजल समस्याग्रस्त राज्यों में यही (हस्तांतरण) तरीका अपनाए जाने की आवश्यकता है। इससे आम लोगों खासकर महिलाओं की भागीदारी बढ़ेगी और कार्य भी पारदर्शी तरीके से हो सकेगा। चूंकि महिलाएं ही घर–गृहस्थी की आधार होती है, इस लिहाज से उन्हें पानी का ठीक–ठीक उपयोग, अनुरक्षण, प्रबंधन और भण्डारण की सही जानकारी होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की समस्या का समाधान बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि वर्षा के पानी का कितना भंडारण, निस्तारण और प्रबंधन (संरक्षण) किया जाता है। इसमें सामुदायिक प्रयास और सरकारी प्रयास का सामंजस्य होना बहुत महत्वपूर्ण है। तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश और कर्नाटक में 'नीर–किट्टी' – जो गांव के सामूहिक प्रयास से वर्षा जल का संरक्षण व प्रबंधन का तरीका है अपनाकर पेयजल और कृषि संबंधी पानी की जरूरतों को काफी हद तक हल कर लिया गया है। ऐसा ही प्रयास राजस्थान के अलवर जिलों में किया गया, जहां पानी की विकराल समस्या हल कर ली गई। इससे भूजल का जहां दोहन पूरी तरह रुकता है, वहीं पर दूषित भूजल पीने की मजबूरी से मुक्ति मिलती है। जल संरक्षण और भंडारण से भेजल स्तर भी धीरे–धीरे ऊपर आ जाता है। वर्षा जल का संरक्षण न होने से हरा–भरा प्रदेश हिमाचल में भी पेयजल की समस्या गांवों में पैदा हो गई है। देश के जिन इलाकों में वर्षा औसत या औसत से कम होती है, वहां वर्षा जल की एक–एक बूंद का संरक्षण और प्रबंधन करना प्राथमिकता के तौर पर होना चाहिए। इससे सालभर शुद्ध पेयजल उपलब्ध होगा और भूजल का अपार दोहन भी रुकेगा। सबके सहयोग से पानी की समस्या का समाधान करना कोई मुश्किल का काम नहीं है, बशर्ते इसके इस दिशा में कार्ययोजना बनाने की जरूरत है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 70 रुपये, दो वर्ष के लिए 135 रुपये, तीन वर्ष के लिए 190 रुपये का (जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

..... पिन .....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक

प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,

नई दिल्ली–110 066

*कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर **निदेशक, प्रकाशन विभाग** को नई दिल्ली में देय हो।*

IAS - PCS

SPECIALIZED FACULTIES OF DISHA

POLITICAL SCIENCE & IR
Dr. M.N. Singh (J.N.U.)
JRF in 2 Subjects
Teaching Experience of 10 Years
Academic Director, Disha-The IAS Academy

HISTORY
K.K. Reddy
(Director KRISP-CSMR)

SOCIOLOGY & SOCIAL WORK
Dr. P.N. Jha (Ph.D., J.N.U.)
Well Experienced Teacher

GEOGRAPHY
P. Kumar (Ph.D., J.N.U.) Teaching Experience of 7 Yrs

ECONOMICS
J. Krishna (Ph.D.,J.N.U.) Teaching Experience of 5Yrs

PUBLIC ADD.
S. Kumar (D. U.) Teaching Experience of 12 Yrs

GENERAL STUDIES
(Module Experts From
Disha-The IAS Academy)

इतिहास
एस. एस. यादव (Ph.D., J.N.U.)
16 वर्षों का अनुभव; लेखक - भारतीय इतिहास दिग्दर्शिका, भारतीय इतिहास भाग-1

समाजशास्त्र & सामाजिक कार्य
डॉ० पी.एन. झा(J.N.U.) Teaching Experience of 12 Yrs

भूगोल
प्रणव कुमार (Ph.D., J.N.U.)Teaching Experience of 7 Yrs

राजनीतिशास्त्र
डा० एम० एन० सिंह एवं पियूष चौबे (J.N.U.)

दर्शनशास्त्र
उमेश्वर पाण्डेय (Ph.D., J.N.U.) Teaching Experience of 7 Yrs

लोक प्रशासन
एस. कुमार (डी० यू०, व्याख्याता) Teaching Experience of 12 Yrs

अर्थशास्त्र
विप्लव मिश्रा (अनुभवी शिक्षक) Teaching Experience of 3 Yrs

सामान्य अध्ययन
(Disha के अनुभवी विशेषज्ञों के समूह द्वारा)

2003- (11), 2004-(16), 2005-(28)

PERFECT GROOMING AT DISHA - The IAS ACADEMY 28 SELECTIONS. THE BEST IN INDIA IN TERMS OF SUCCESS RATE.

Rank 35 AKSHAT GUPTA,
Rank 43 SHEETAL NANDA
Rank 109 SUDHANSU D. MISHRA
Rank 186 G.S.P DAS
Rank 190 - VIJENDRA BIDARI
Rank 232 - JANESH
Rank 244 ANUP KUMAR SAHU
Rank 246 SANKALP N. SINGH
& MANY MORE

NEW BATCH SCHEDULE
FOUNDATION & MAIN EXAM BATCHES
5th June, 5th July, 5th Aug.

POSTAL GUIDANCE
Interactive Postal Guidance Materials available for : G.S, Political Science, Geography, History, Sociology, Public Administration, Economics

Note : Fee Concession to SC/ST Candidates

Contact personally or write for prospectus with a DD/MO for Rs. 50/- Favouring Disha-The IAS Academy

DISHA® -The IAS Academy
GROOMING ALL FOR THE CIVIL SERVICES

585, 1st Floor, Jay Pee Complex, Bank Street, Munirka, New Delhi - 110 067
Ph. : 55640506, 55640507, Mob. : 09818327090
E-mail : disha_the_ias_academy@yahoo.co.in

WE HAVE NO OTHER BRANCH

KH-06/06/04

जल संकट का निदान वर्षा जल संचयन में

एस.आर.कन्नोजे

महान वैज्ञानिक गेटे ने जल के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि प्रत्येक वस्तु जल से ही उत्पन्न होती है व जल के द्वारा ही प्रतिपादित होती है। जल के महत्व को ध्यान में रखते हुए 1977 में आयोजित संयुक्त राष्ट्र संघ सम्मेलन में वर्ष 1981 से 1990 तक के दशक को पेयजल दशक के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया थां संयुक्त राष्ट्र संघ ने 2003 को अंतर्राष्ट्रीय स्वच्छ जल वर्ष के रूप में मनाया है। यह सर्वविदित है कि पृथ्वी पर जल की कुल मात्रा लगभग 146 करोड़ घन किलोमीटर है, यह हमारे 70 प्रतिशत धरातल को ढके हुए हैं। जल की उपलब्धता में से 97 प्रतिशत पानी समुद्र में खारे जल के रूप में मौजूद है, 2 प्रतिशत पानी हिमशिखरों पर बर्फ के रूप में जमे हुए हैं, मात्र 1 प्रतिशत पानी पेयजल के रूप में विद्यमान है, लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि हम इस पानी को प्रदूषित होने से नहीं बचा पा रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में दुनिया के 80 देशों में पानी की गंभीर समस्या है, विश्व के 40 प्रतिशत लोगों को पीने का पानी नसीब नहीं हो रहा है। जान हाफकिन्स पापुलेशन इन्फारमेशन द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया है कि विश्व के अन्य 16 देशों को सन् 2025 तक पानी की गंभीर समस्या, कमी व दबाव का सामना करना पड़ेगा, आज के दिन दुनिया के लगभग 50 करोड़ लोग जल की कमी का सामना कर रहे हैं। विश्व में प्रतिवर्ष 6000 बच्चे गंदे एवं प्रदूषित जल से जनित रोगों से मर जाते हैं, विश्व में प्रतिवर्ष 22 लाख लोग दूषित जल जनित रोगों से जीवनलीला समाप्त कर लेते हैं, यह स्थिति शोचनीय एवं चिंतनीय है।

बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगीकरण तेजी से हो रहे वनविनाश ने जल संकट को बढ़ावा दिया है, कृषि के रूप में धान की खेती ने जल खपत को बढ़ाया है। पेयजल एवं कृषि हेतु शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिजल के अनियंत्रित दोहन के फलस्वरूप जल स्तर लगातार कम होता जा रहा है, कुएं व बावड़िया समय के पहले ही इस्तीफा दे रहे हैं, जलाशय व पोखर भी सूखे की कहानी कह रहे हैं आंकड़ों के अनुसार 1900 से 2001 तक जल की आवश्यकता 6 से 7 गुणा बढ़ी है, जो कि जनसंख्या वृद्धि की दर से भी ज्यादा हैं। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या व जल संकट पर संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में जानकारी दी गई है कि सन् 2025 तक विश्व की जनसंख्या 8 अरब तक पहुंच जायेगी तथा 7 अरब लोग भयंकर पेयजल संकट के चपेट में होंगे।

हमारे राजा–महाराजाओं ने पारंपरिक कुओं, बावड़ियों, जलाशयों के निर्माण को अपने जीवन में महत्व दिया व लोकहित के ऐसे कार्य करवाये, जीवन में जितनी आवश्यकताएं थी उतने ही खर्च किया, जल को धरती के अंदर भेजकर भावी पीढ़ी के लिए रास्ता सुगम किया। एक समय था जब का खजाना लबालब था, लोग कम थे और जल अधिक, जल संकट का नामोनिशान न था। वर्तमान में मानव ने खजाना खाली करने में अपना अदम्य साहस दिखलाया है, मानव की गिद्ध दृष्टि धरती के छुपे जल तक पहुंच गया और धरती में छेद ही छेद कर जल उलीचने में ही अपनी ऊर्जा खपत कर रहा है।

देश भूजल पर ही निर्भर रहता है, नदियों व तालाबों का नम्बर बाद में आता है, गांवों में कुंओं के महत्व को कोई नहीं नकार सकता, देखते ही देखते कुंओं का स्थान हैंडपंपों ने लिया और इनका स्थान नलों ने लिया। हमने सिर्फ प्राकृतिक जल संपदा का दोहन ही किया है, कभी जल स्तर को बढ़ाने के बारे में नहीं सोचा, गांवों व शहरों में वर्षाजल को योजनाबद्ध तरीके से नियंत्रित नहीं कर पा रहे हैं, गांव की गलियों को भी शहरों की ही तरह कांक्रीटीकरण, डामरीकरण, फर्शीकरण किया जा रहा है, जो गली वर्षा के जल को सोखकर धरती के भंडार को भरने में सहायक होता था, आज पक्की नालियां व सड़क होने के कारण बहुत कम क्षेत्र में ही जल अंदर जा पाता है, वर्षाजल का 90 से 95 प्रतिशत भाग बहकर नदियों के रास्ते समुद्र में पहुंच जाता है आज जरूरत है कि गांव के पानी को गांव में ही रोकें, खेत के पानी को खेत में रोंके, पानी व मिट्टी को बहने से रोकें, यह कार्य जनभागीदारी के माध्यम से ही संभव है।

भूजल में वृद्धि करने के अनेक उपाय हैं जिससे जल संरक्षण, जल संवर्धन, भूसंरक्षण संभावित है– डबरी, डबरा, फार्म पाण्ड या डग आउट पाड़ बनाकर, कुड़ी या कुईयां बनाकर, सोकपिट का निर्माण कर, पुराने कुंओं, जलाशयों का जीर्णोद्धार कर, सुधार व सफाई कर, कुंओं व नलकूपों में भूजल रिचार्ज कर, सोख्ता गडडा, नाला बंधान कार्य, बोरी बांध, घर–घर में जल देवता का निर्माण कर, तथा वर्षाजल संचयन (रेन वाटर हार्वेस्टिंग) कर वर्षाजल को धरती के अंदर भेज सकते हैं। वर्तमान में वर्षाजल की सामुदायिक प्रबंधन की आवश्यकता है, वर्षाजल संचयन को ही रेन वाटर हार्वेस्टिंग कहते हैं, इसमें वर्षाजल को एकत्र करसतह पर संग्रहित कर उपयोग करना व भूजल संवर्धन हेतु उपयोग में लाया जाता है यही इसका मुख्य उद्देश्य है।

सतही बहाव का संचय सामुदायिक रूप से व जन सहयोग की भावना से ही संभव है, नदी नालों में छोटे–छोटे बांध बनाकर, तालाब, पोखर, सरोवर का निर्माण कर जल को संग्रहीत किया जा सकता है, जो हमारे दैनिक जीवन की आवश्यकता की पूर्ति के साथ ही भूजल संवर्धन में सहायक होगा। छत से प्राप्त वर्षा को फिल्टर कर स्टोरेज टैंक में एकत्र कर वर्षा काल व अन्य समय में पूरे वर्ष भर पीने व अन्य कार्यों में उपयोग

किया जा सकता है। वर्षाजल संचय पानी की समस्या से निपटने में सहायक सिद्ध होगा, आवश्यकता है वर्षाजल का सम्मानपूर्वक प्रबंधन।

आज आवश्यकता है कि नव निर्माणाधीन भवनों में वर्षाजल संचयन एवं भूजल रिचार्ज की विधियों को अपनाने हेतु प्रेरित किया जाए तथा वर्षाजल संचयन करने हेतु जागरूकता फैलाने के साथ ही तकनीकी जानकारी उपलब्ध करायी जाए, भूजल में वृद्धि हेतु सतही स्रोतों का आवश्यकतानुसार जीर्णोद्धार कराया जावे। भूजल स्तर में वृद्धि हेतु वर्षाजल के बहाव को कम करने के लिए स्टाप डेम व छोटे स्तर के तालाबों का निर्माण भी जनसहयोग से संभव है। मोहल्लों, गांवों में नलों से बहने वाले व्यर्थ पानी के संरक्षण हेतु प्रयास हों। कृषकों को सिंचाई के लिये ड्रिप सिंचाई पद्धति हेतु प्रोत्साहित किये जाने की आवश्यकता है। जल संकट के निराकरण हेतु समाज के सभी वर्गों व सरकार द्वारा सतत सामूहिक प्रयास की जरूरत है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीवन शैली व प्राथमिकताओं में बदलाव लाने की जरूरत है, अवैध बोरिंग खनन पर रोक लगायी जाये, नियंत्रित व आवश्यक मात्रा में जल का निष्कासन हो, पारंपरिक जल संवर्धन व आधुनिक जल संरक्षण व्यवस्थाओं का उपयोग हो।

प्रतिवर्ष भारत की सतह पर गिरने वाले 4000 घन किलोलीटर जल के 50 प्रतिशत से 2/3 हिस्से के बेकार बह जाने के कड़वे तथ्य को ध्यान में रखते हुए वृक्षों/वनों की खतरनाक ढंग से हो रही कटाई को कड़ा कानून बनाकर रोकना ही होगा। साथ ही प्रत्येक संभव स्थान पर विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में जल संग्रहण के विशेष कार्यक्रम बनाकर यूं ही बर्बाद हो जाने वाले जल की अथाह मात्रा को संग्रहित करने का प्रयास करना ही होगा।

पेयजल सिंचाई एवं औद्योगिक इकाईयों में जल आपूर्ति के लिये निरंतर भूजल दोहन किये जाने से भूजल स्तर काफी नीचे चला गया है, वहीं प्रतिवर्ष लाखों गैलन जल बेकार बहकर चला जाता है, व्यर्थ बहने वाले इस वर्षाजल को विभिन्न संरचनाओं के माध्यम से जमीन के अंदर पहुंचाकर भूजल स्तर में वृद्धि करना ही समस्या का समाधान है, वर्तमान की मांग है और वक्त की पुकार भी। ग्रामीण क्षेत्र में भूजल संवर्धन वाटर शेड को इकाई मानकर किया जाता है, नदी–नालों में बरसात का व्यर्थ जल कृत्रिम जल पुनर्भरण तकनीक द्वारा भूजल को संग्रहीत कर धरती में पानी के खजाने को बढ़ाया जा सकता है। बढ़ती जल की मांग को पूरा करने के लिये भूमिजल की अंधाधुंध निकासी जारी है, जिससे भूमिगत जल का स्तर काफी नीचे चला गया है, जल स्तर प्रतिवर्ष 5–7 फुट नीचे जा रहा है। भारत के बहुत से जिलों में जल स्तर स्रोत स्थाई रूप से सूख चुके हैं व कई भू–भाग रेगिस्तान में तब्दील हो रहे हैं। भूमिगत जल मुफ्त में प्राप्त हो रहा है इसलिये लोग महत्व को नहीं समझ पा रहे हैं। अंजान लोगों का यह कहना कि धरती में जल का भंडार है, जल कभी खत्म नहीं होगा यह कहना सर्वथा गलत है। आज हम सभी को संकल्प करना होगा कि धरती में पानी का भंडार सदा भरा रहे, ताकि आने वाले पीढ़ी को जल से भरा जहान दे सके।

वर्षा जल गंगा जल बनकर, देता जीवन दान है। बाहर बूंद न जाये गांव से, यह अपना अभियान है।।

(लेखक शासकीय महाविद्यालय अम्बागढ़ चौकी, राजनंदगांव से संबद्ध हैं)

देश के महत्वपूर्ण जलाशयों में मौजूदा जल भंडार

केंद्रीय जल आयोग देश के 76 महत्वपूर्ण जलाशयों में जल भंडारण की स्थिति पर नजर रखता है। इन जलाशयों में से 31 जलाशयों में पन बिजली उत्पादन क्षमता है और प्रत्येक की स्थापित क्षमता 60 मेगावाट से ऊपर है। इन जलाशयों में वर्षा ऋतु की शुरूआत में यानि पहली जून, 2005 को जल भंडार इनकी निर्धारित क्षमता का कुल 13 प्रतिशत था और इस समय यानि 21 अप्रैल, 2006 को यह निर्धारित क्षमता का 29 प्रतिशत है। मौजूदा जल भंडार पिछले वर्ष के जल भंडार का 143 प्रतिशत और मौजूदा अवधि के दौरान पिछले दस वर्षों के औसत का 139 प्रतिशत है। इन 76 जलाशयों में से इस समय 19 जलाशयों में इस वर्ष जल भंडार पिछले 10 वर्ष के औसत का 80 प्रतिशत या इससे कम है। उपलब्ध जल का अधिक से अधिक फायदा उठाने के लिए केंद्रीय जल आयोग कृषि तथा सहकारिता विभाग से संपर्क बनाये रखता है, और साप्ताहिक आधार पर जलंभंडारण की स्थिति की जानकारी फसल निगरानी दल को देता रहता है, ताकि फसलों के लिए यथोचित रणनीति बनाई जा सके। आयोग जल संसाधनों के नियोजन से संबंधित विभिन्न विभागों और मंत्रालयों को भी वस्तुस्थिति की जानकारी देता रहता है।

21 अप्रैल, 2006 के अनुसार नदी–बेसिनों में मौजूद जल की स्थिति इस प्रकार है –

- सिंधु, कच्छ की नर्मदा, तापी, माही और साबरमती नदियों, गोदावरी, कृष्णा, महानदी और पड़ोस की पूर्व की ओर बहने वाली नदियां, कावेरी तथा दक्षिण की पूर्व की ओर बहने वाली नदियों और पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों में पिछले 10 वर्ष के औसत से बेहतर।
- ऐसी कोई भी नदी नहीं, जिसमें मौजूदा जल पिछले दस वर्ष के औसत का 80 प्रतिशत या इससे अधिक हो।
- गंगा नदी में पिछले दस वर्ष का औसत 80 प्रतिशत से कम।

उल्लेखनीय पन बिजली क्षमता वाले 31 जलाशयों में से 9 जलाशयों में जल भंडार पिछले दस वर्ष की क्षमता के औसत से कम है।

पानी और समाज के सरोकार

अभिषेक शर्मा

पानी का संकट जिस तेजी के साथ गहरा रहा है उसके मद्देनजर इस तरह की कविताओं में भविष्य की भयावह तस्वीर देखी जा सकती है। ऐसा नहीं है कि संकट की इस आहट को महसूस करने के लिए किसी कविता–कहानी या आंकड़ों की जुबान की जरूरत है। इस मामले में वैसे भी अब आंकड़ों इत्यादि से समस्या की गंभीरता का अहसास करने या आकलन करने का वक्त निकल चुका है। देश का हर बाशिंदा, कम या ज्यादा में, इस बात को अच्छी तरह जान चुका है कि पानी समाज से पानी छीना जा रहा है। इस पर मालिकाना हक के लिए षड्यंत्र चल रहे हैं। पर इस सचाई से सभी वाकिफ हैं कि पानी की कमी है। शहरी समाज की तुलना में ग्रामीण समाज को स्वभाविक रूप से पानी की कमी का अहसास अधिक है। और पुरुषों से ज्यादा जानती हैं महिलाओं को ही पानी की किल्लत क्या होती है। समतल हो या पहाड़ महिलाओं को ही पानी की व्यवस्था करनी होती है। इस बार जिस तरह समय से गर्मी ने समय से पहले दस्तक दी है उससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि आने वाले दिन पहले से ज्यादा कष्टकारी होंगी। अंदाजा इस सचाई से भी लगाया जा सकता है की जो पहाड़ हरियाली, ठंडक और प्राकृतिक सौंदर्य की वजह से लोगों को न जाने कहां–कहां से अपनी ओर खींचते हैं अब वही सूखे की चपेट में हैं। हवाला उत्तरांचल का है। औसत से काफी कम बारिश होने के कारण राज्य में रबी की 50 से 60 फीसदी फसल चौपट हो चुकी है। नदियां सूख रही हैं और ग्लेशियार तेज गति से पिघल रहे हैं। दावाग्नि का डर इस बार पहले से कहीं जयादा है। आशंका व्यक्त की जा रही है कि इस बार यहां पानी के लिए हाहाकार मचने वाला है। राजस्थान में इस बार 15 हजार गांवों पर सूखे का साया है। यह आंकड़ा सरकारी है इसमें बढ़ोत्तरी की अच्छी–खासी गुंजाइश है। उधर, मध्य प्रदेश में आलम यह है कि राज्य के 18 से अधिक जिलों में पलायन की स्थितियां हैं। प्रदेश में दस जिलों की 24 तहसीलें सूखा–प्रभावित हैं। लगता है कि होली से पहले ही यहां पानी के लिए हाय–तौबा मच सकती है। उत्तर प्रदेश में भी भूमिगत जल का स्तर खतरनाक गति से नीचे जा रहा है। पानी के लिए लड़ाई–झगड़े और विरोध प्रदर्शनों का सिलसिला है कि थमने का नाम नहीं ले रहा। उत्तर के अन्य राज्यों के साथ–साथ दक्षिण भारतीय राज्यों के ग्रमीण हिस्से भी सूखे की गिरफ्त में हैं और शहरी इलाकों में शुद्ध पेय जल की समस्या गहराती जा रही है। कुल मिलाकर देशभर में इस बार पानी की समस्या गहराने के आसार ज्यादा हैं। लेकिन क्या इन हालात के लिए सिर्फ सरकार को कोसकर तब्दील किया जा सकता है। निश्चय ही नहीं। इन स्थितियो के लिए क्या कभी हमने अपने भूमिका को जिम्मेदार मानने का ईमानदार आकलन किया है। शायद यह भी नहीं ही किया होगा।

इस साल इस गर्मी में पानी की परछाइयां भर मिलीं
यात्राओं में घाटों से दूर जा चुके पानी के चिह्न भर मिले
और गांव–घर की स्त्रियां मिलीं
पानी के लिए विलाप करती हुई
निरंतर
कहना कठिन है
पानी के लिए दम साधे सूखे किनारों को
और मछलीमारों को
और कितने दिन
कितने अंनतकाल करने होंगे समुद्र–जाप
कहना कठिन है सचमुच

हमारे समाज का एक चरित्र यह भी है कि वह किसी भी समस्या का ढीकरा के सिर फोड़ अपनी जिम्मेदारी और भूमिका से हमेशा बचता आया है। पानी के संकट को इस हद तक पहुंचाने में भी हमारे समाज का यह चरित्र एकदम साफ दिखलाई पड़ता है। सरकार ने क्या किया और वह क्या कर रही है अगर इस सवाल को थोड़ी देर के लिए एक तरफ कर दें और फिर ईमानदारी से सोचें कि हम इस समस्या के लिए किस हद तक जिम्मेदारी है? समाज की भूमिका को लेकर एक नहीं अनेक सवाल हैं। हमने अपने साधन–संसाधनों की साफ–सफाई और अनकी रक्षा के लिए क्या किया? अपनी नदियों को बचाए रखने के लिए कभी किसी तरह का तजन किया? क्या हम अब भी नदियों को प्रदूषण से बचाए रखने की खातिर उनमें फूल–पत्र और अन्य पूजा सामग्री से भरी प्लास्टिक की पन्नियां फेंकने से बाज आए हैं? हम पानी के उपयोग में कितना नियंत्रण बरतते हैं? प्रदूषण को लेकर कहां तक सचेत रहते हैं या रहे हैं? पानी की बर्बादी रोकने के लिए घर और बाहर हम कहां तक सतर्क रहते हैं? वगैरह–वगैरह।

माना कि पानी के प्रबंधन और उससे जुड़ी तमाम व्यवस्थाएं लोगों तक पहुंचाने की जिम्मेदारी सरकार की है क्योंकि वह इस सबका हमसे पैसा लेती है। लेकिन नियंत्रण से जुड़े कितने ही दैनंदिन क्रिया–कलाम तो हमारे बस में हैं ही। यदि ईमानदारी से हम अपना आकलन करेंगे तो पाएंगे कि हम बहुतेरे मोर्चों पर फेल रहे हैं हमारी इसी कोताही ने समस्या को और गहरा किया है।

यहां ईमानदरी से यह स्पष्ट करना जरूरी है कि अपनी आदतों से जुड़े इन तमाम प्रश्नों को लेकर शहरी और महानगरीय समाज बेशर्मी की हद तक बेपरवाह है। इस संदर्भ में जल संरक्षण के लिए मैगसेसे पुरस्कार पाने वाले राजेंद्र सिंह की काफी पहले कही गई एक बात दिल्ली के संदर्भ में विशेष तौर पर याद आती है। बकौल राजेंद्र सिंह, 'दिल्लीवालों को लगता है कि हम तो देश की राजधानी में रहते हैं। हमारे लिए पानी इंतजाम तो सरकार कहीं ने कहीं से कर ही लेगी। उन्हें अपने राजधानीवाला होने का दंभ है। लेकिन यह दंभ ज्यादा समय तक कायम नहीं रह सकता। अपनी यमुना को प्रदूषित कर अब दिल्लीवाले गंगा के आसरे हैं।' राजेंद्र सिंह की बात सही साबित हो चुकी है। दिल्ली वाले आज पानी के लिए दूसरे राज्यों के मोहताज हैं। दिल्ली के पास अपना पानी है नहीं है और पड़ोसी राज्य पानी देने के लिए तैयार हैं नहीं। प्रख्यात पर्यावरणविद अनुपम मिश्र भी लगातार यह बात कहते आए हैं कि दिल्लीवालों को अब यह घमंड त्याग देना चाहिए कि उन्हें कहीं से भी पानी मिल जाएगा। सभी को अपने–अपने स्तर पर पानी को बचाने का जतन करना चाहिए।

दिल्ली की इस सचाई से साफ है कि हर व्यक्ति को कम से कम अपने घर की ही तरह अपने परिवेश व शहर की चिंता करनी चाहिए। अगर हरेक समाज, खासकर शहरी और महानगरीय, इस सीख की कीमत समझक इसे अपने जीवन में उतारा ले तो कम से कम फिर कम सरकार से किसी भी तरह का सवाल पूछने के नैतिक हकदार हो जाएंगे और संभवतः सरकार की जनविरोधी नीतियों के विशेध का वजन भी बढ़ जाएगा।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

धतुरिया ग्राम झाबुआ के कायापलट में राजीव गांधी जलग्रहण मिशन की भूमिका

सुनील कुमार शर्मा और महेश कुमार परदेसी

भारत सरकार द्वारा देश में सूखे की विभीषिका को नियंत्रित करने एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के स्थायी अवसर उपलब्ध कराने के उद्देश्य से राजीव गांधी जलग्रहण प्रबंधन मिशन की स्थापना की गई है।

मध्यप्रदेश में इस योजना के तहत 297 विकास खण्डों में यह योजना संचालित की जा रही है। म.प्र. के झाबुआ जिले के 5 विकासखण्डों के लगभग 556 ग्रामों में यह योजना 1.4.1995 से संचालित की जा रही है। इस मिशन के द्वारा मुख्य रूप से मिट्टी और पानी जैसे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं संवर्द्धन को आधार बनाकर कार्ययोजना बनाई गई। जिसमें ग्रामीण समाज के ज्ञान और कौशल का उपयोग कर ग्रामीण समस्याओं के समाधान के प्रयास किये जा रहे हैं। साथ ही इस कार्ययोजना के लाभों को समाज के कमजोर तबको तक पहुंचाकर सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है।

राजीव गांधी जलग्रहण प्रबंधन मिशन के लाभों का सूक्ष्म मूल्यांकन करने के उद्देश्य से हमारे द्वारा झाबुआ जिले की पेटलावद तहसील के ग्राम धतुरिया के ग्रामीणों ने चर्चा के दौरान सिंचाई, कुएं, नलकूपों का जल स्तर बनाए रखने, पेड़–पौधों को हरा–भरा बनाए रखने, ऊँची–नीची और ढालू भूमि होने से भू–क्षरण रोकने, स्टाप डेम, तालाब, चारागाह, वृक्षारोपण व मिट्टी के बंधान जैसे कार्यों को करने के लिए राजीव गांधी जलग्रहण प्रबंधन मिशन को बेहद उपयोगी प्रतिपादित किया।

इस दिशा में राजीव गांधी जलग्रहण प्रबंधन मिशन से जुड़ने के बाद ग्राम के समग्र विकास के लिए (1) तकनीकी (2) आर्थिक (3) सामाजिक/गतिविधियों को हाथ में लिया गया।

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि धतुरिया ग्राम में भू–क्षरण एवं जल संकट के समाधान के लिए इस मिशन के द्वारा जन सहभागिता के माध्यम से एक तालाब का निर्माण किया गया, जिसकी लागत 1.90 लाख है। इस तालाब से लगभग 18 हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई की जा रही है। वाटरशेड समितियों के माध्यम से 30 हेक्टेयर क्षेत्र सिंचित किये जाने का लक्ष्य स्टाप डेम बनाकर पूर्ण किया जा रहा है। इसी प्रकार भू–जल संवर्द्धन तथा भू–कटाव को रोकने के लिए नालों के जलमार्ग में ढाई से तीन मीटर ऊँचे मिट्टी एवं बोल्डर के चैकडेम बनाए गए हैं जो जल संवर्द्धन में बेहद उपयोगी साबित हुए हैं। ठीक इसी तरह ऐसे खेत जहां जलदरियां बन गया है, वहां पत्थर बंधान का कार्य किया गया है। जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी का कटाव रुकने के साथ ही भूमि में नमी एवं जलस्तर में वृद्धि हुई है। इन बंधानों पर रतनजोत, खैर, सु–बबूल आदि का रोपण किया गया है। इससे ग्रामीणों को अतिरिक्त आय के अवसर उपलब्ध हुए हैं।

चारागाह विकास हेतु सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर मिट्टी बंधान वाले स्थानों पर सु–बबूल, डंडा, करोंदा, हमाटा, दीनानाथ जैसी उन्नत किस्म की घास रोपित की गई है। वनीकरण की दृष्टि से वन विकास समितियों एवं उद्यानिकी विभाग के सहयोग से सुरजना, सीताफल, बैर, इमली, आंवला, खिरनी, करंच, सागौन, शीशम, अर्जुन, अमरूद, नीम, आम जैसे बहु उपयोगी पौधों का उचित स्थानों पर रोपण किया गया है।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त धतुरिया ग्राम के निवासियों कृषि वानिकी, उद्यानिकी, अन्तवर्तित फसलें, उन्नत रबी एवं खरीफ की फसलें, उन्नत मत्स्य पालन, बकरी एवं मुर्गीपालन जैसी जन एवं धनोपयोगी योजनाओं का लाभ भी प्राप्त हो रहा है। इतना ही नहीं ग्रामवासियों के लाभ के लिए फसल बीमा योजना भी लागू की गई है।

इस कार्यक्रम की सामाजिक उपादेयता एवं नियंत्रण के लिए एक कम्युनिटी आर्गनाइजर भी रखा गया है। जो निरंतर शिक्षा, स्वास्थ्य जागरूकता, पशु चिकित्सा, शिविर, बचत समूह नशा मुक्ति अभियान, उन्नत बीज वितरण कार्यक्रम, निरख–परख, नाडेप, एक्टीविटी सेंटर, शौचालय का निर्माण जैसे कार्यक्रमों के निरंतर संचालन से सतत् विकास की अवधारणा को बनाए रखने का प्रयास कर रहा है।

इस प्रकार राजीव गांधी जलग्रहण प्रबंधन मिशन की त्रिस्तरीय कार्ययोजना के क्रियान्वयन ने धतुरिया ग्राम का कायापलट करने में अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इसी प्रकार के कार्यों के कारण झाबुआ जिले को सम्पूर्ण देश में वाटरशेड का "हेड–मास्टर" भी कहा जाता है।

(लेखक शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ में क्रमशः वाणिज्य एवं समाजशास्त्र विषय के अध्यापक हैं)

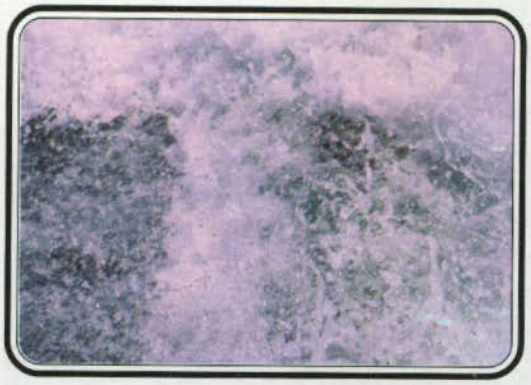

खतरे में है गंगा का अस्तित्व

मनीष कुमार सिन्हा

भारत नदियों का देश रहा है, जहां गंगा, यमुना, गंडक, कोसी, नर्मदा, ताप्ती एवं गोदावारी जैसी कई पवित्र नदियां बहती हैं। इन नदियों के बीच गंगा का स्थान अनुपम एवं अद्वितीय है। गंगा सिर्फ एक नदी ही नहीं बल्कि सदियों से यह करोड़ों लोगों की आस्था का प्रतीक रही है। इसके साथ कई पौराणिक कथाएं जुड़ी हुई हैं। गंगा को पुण्य सलिला, पतित पावनी, पापनाशिनी विष्णु दासी व न जाने कितने उपनाम दिए गए हैं। गंगा नदी के बहाव का सफर हिमालय की दुर्गम पहाड़ियों से प्रारंभ होकर 2250 किलोमीटर दूर बंगाल की खाड़ी में जाकर खत्म होता है। नदी के तौर पर अपनी इस लंबी यात्रा में गंगा तीन प्रमुख राज्यों, उत्तर–प्रदेश, बिहार तथा पश्चिम बंगाल से होकर गुजरती है। इन राज्यों की लाखों हेक्टेयर जमीन सिंचाई हेतु गंगा के पानी पर आश्रित है। गन्ना, गेहूं तथा धान की खेती के मामले में पश्चिमी उत्तर प्रदेश देशभर में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। और यहां की संपन्नता को हरियाणा व पंजाब के समरूप माना जाता है। इसका कारण गंगा ही है। ऊपरी, निचली तथा मध्य गंगा नहरों के जरिए इस क्षेत्र में व्यापक सिंचाई सुविधा उपलब्ध करा रही है। लेकिन दुख का विषय है कि उसी पवित्र पावनी गंगा का अस्तित्व खतरे में है।

'गंगा तेरा पानी अमृत' के लिए जानी जाने वाली गंगा मैदानी क्षेत्रों में सर्वप्रथम हरिद्वार को स्पर्श करती है लेकिन हरि के द्वार आते–आते यह इतनी प्रदूषित हो जाती है कि गंगा का जल 'सेवन' तथा 'आचमन' करने योग्य नहीं रह पाता है। यह जल इतना प्रदूषित हो जाता है कि इसका उपयोग केवल कृषि कार्य के लिए हो सकता है। सेवन अथवा धार्मिक क्रियाओं हेतु नहीं।

वैज्ञानिकों के मुताबिक गंगा का प्रदूषित होना वस्तुतः उसके उद्गम स्थल पर ही शुरू हो जाता है। पर्यटक व तीर्थ यात्रा तो बेशुमार गंदगी गंगा के हवाले करते ही हैं। पर्यटक आवास, गृहों, धर्मशालों, होटलों तथा आश्रमों के तमाम मलमूत्र गंगा में ही गिराए जाते हैं।

हरिद्वार स्थित 'भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड' के वैज्ञानिक बताते हैं कि गंगा का जल पीने तो क्या नहाने के लायक भी नहीं बचा है। आज जब गंगा में हजारों श्रद्वालु स्नान करने के लिए उतरतें हैं तो उन्हें 'नाले' के पानी का सामना करना पड़ता है। हरिद्वार में छोटी–बड़ी दवा कंपनियां, एसीटोन, हाइड्रोक्लोराइड एसिड और दूसरे खतरनाक रसायनों का घुला–मिला कचरा, सीधे गंगा में बहा दिया जा रहा है।

इन वैज्ञानिकों की राष्ट्रीय नदी सरंचना निदेशालय और पर्यावरण मंत्रालय को प्रेषित रिपोर्ट मे कहा गया है कि गंगाजल में इतना जहर समा गया है कि उसमें नहाने से हैजा, आंत्रशोध, वायरस, हेपेटाइटिस और पेचिश जैसे संक्रामक रोग या महामारी फैलने का खतरा है। लाखों लोगों के डुबकी लगाने के बाद गंगा जल में उपस्थित रासायनिक तत्वों और उसकी अम्लीयता व क्षारीयता का संतुलन बुरी तरह गड़बड़ा जाता है और ऐसे में नहाना जोखिम भरा हो सकता है।

लगभग यही कमोवेश हाल है देश की अन्य प्रमुख नदियों का। इन नदियों की धीमी मौत पर ध्यान देते हुए सरकार इसकी सफाई के लिए एक्शन प्लान समय–समय पर शुरू करती रहती है लेकिन यह प्लान तब तक सफल नहीं हो सकता है जब तक आम आदमी इसकी सफाई पर ध्यान नहीं देता है। इन नदियों को सरकार नहीं बल्कि आम आदमी ही सफाई कर सकता है। हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि पर्यावरण में जल का विशेष महत्व है और इसे व्यर्थ ही नहीं बहने देना है।

इन नदियों को प्रदूषित होने से बचाने के लिए पर्यावरण जागृति के लिए राजनीति से जुड़े लोग और समाजसेवी संस्थाएं अहम् भूमिका निभा सकते हैं। अच्छा हो कि पर्यावरण जागृति को एक रचनात्मक आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया जाए। उद्योगों को लगाने से पहले प्रदूषण रोकने के उपाय करने संबंधी नीति को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। प्रदूषण फैलाने वाले किसी भी कारखाने को चालू रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसके बावजूद भी इन नदियों को अगर दूषित किया जा रहा हो तब ऐसे लोगों के लिए कठोर सजा का प्रावधान हो।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने देश की 28 प्रमुख नदियों में 12 वर्षों के सर्वेक्षण के बाद पता लगाया कि नदियों के पानी म्रें दैनिक ऑक्सीजन गंगा की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। बोर्ड के सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि विगत कुछ वर्षों से नदियों के पानी में कोलीफार्म बैक्टीरिया की मात्रा भी खतरनाक ढंग से बढ़ रही है।

इसलिए बेहतर यही है कि समय से पहले हम अपने आप को सचेत कर लें। इन नदियों में मिलने वाली छोटी–छोटी नालियों की गंदगी को इसमें मिलने से हमें रोकना होगा। आज भी आम मध्यवर्गीय परिवार में पूजा–पाठ में बचे शेष चीजों को इन नदियों में प्रवाहित कर दिया जाता है ताकि इन पर किसी का पैर न पड़े और हम पापकर्म से मुक्ति मिल जाए लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि इन अपशिष्ट सामग्रियों को नदी में प्रवाहित कर इसके पानी को भारी क्षति पहुंचा रहे हैं।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

बिन पानी सब सून

श्याम मनोहर व्यास

कविवर रहीम ने कहा है : "रहिमन" पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न उबरे, मोती मानस चून।।

पृथ्वी का 71 प्रतिशत भाग समुद्र से आच्छादित है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि समुद्र का आज से दो अरब वर्ष पूर्व जन्म हुआ था। समुद्र की आयु जानने के लिए केवल एक की साधन है। समुद्र के तल में स्थित तरह–तरह की चट्टानें। इन चट्टानों को वैज्ञानिक साधनों के जरिये जांच–परख कर समुद्र की आयु का अनुमान लगाया जाता है। सबसे बड़ा महासागर प्रशान्त महासागर है। यह अकेला ही धरती की बराबरी कर सकता है। इसका विस्तार 5 करोड़ 50 लाख वर्गमील है। समुद्र इतना गहरा है कि यदि हिमालय पर्वत को समुद्र में डुबोया जाए तो न केवल वह डूब जाएगा, वरन 7000 फीट पानी उस पर और चढ़ जाएगा। समुद्र की औसत गहराई 12,000 फुट है। पानी की गहराई नापने के लिए फैदम का माप है। एक फैदम छह फुट के बराबर होता है। जहां 100 फैदम से कम गहराई होती है, वहां समुद्र को छिछला समझा जाता है। समुद्र की कुल जलराशि का आयतन लगभग एक अरब घन किलोमीटर है। समुद्र की सबसे अधिक गहराई फिलीपीन्स द्वीप समूहों के आसपास है जिसका माप 35,000 फुट है।

समुद्र के पानी का घनत्व साधारण पानी के घनत्व से अधिक होता है। इसका कारण यह है कि समुद्र के पानी में अनेक रासायनिक लवण मिले होते हैं। इसीलिए इसका पानी खारा होता है। स्वच्छ जल का घनत्व एक होता है और वह रंगहीन तथा स्वादहीन भी होता है। अनुमान है कि हर वर्ष के लगभग 150 अरब मन वस्तुएं नदियों के पानी में बहकर समुद्र में जा समाती हैं। इन वस्तुओं में केवल नमक ही नहीं वरन तरह–तरह के खनिज पदार्थ भी होते हैं। समुद्र के एक वर्गमील पानी में ही एक अरब मन नमक मिल सकता है।

समुद्र के जल में कोबाल्ट, यूरेनियम, सोना, चांदी, लोहा, निकिल, तांबा, जस्ता, मैग्नीज तथा मैग्नीशियम आदि धातु पाई जाती हैं। इसीलिए समुद्र को "रत्नाकर" कहा है। पृथ्वी का 97.3 प्रतिशत पानी महासागरों और अन्तर्देशीय सागरों में है। शेष 2.7 प्रतिशत हिमनदों, मीठे जल की झीलों, नदियों और भूमिगत जल के रूप में पाया जाता है। सौर ताप महासागर के जल को गतिशील रखता है। भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में सूर्य पानी को गर्म कर देता है जिससे यह फैलकर कुछ इंच ऊपर उठ जाता है। फिर भी सागर अपनी सीमा में ही रहता है। विश्व की सबसे लम्बी दो नदियां हैं– प्रथम अमेजन नदी, जो साढ़े छह हजार किलोमीटर लम्बी है, यह दक्षिण अमेरिका में बहती है। दूसरी नील नदी है जो अफ्रीका में बहती है और 6670 किलोमीटर लम्बी है।

यह सत्य हे कि पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल होते हुए भी इसमें से मानव उपभोग योग्य जल की मात्रा बहुत कम है। पानी की अपनी प्राकृतिक व्यवस्था है। पृथ्वी पर पानी की मात्रा लगभग सदा एक ही रहती है। एक जल चक्र है जो चलता रहता है। समुद्र से और धरती से पानी का वाष्पीकरण होता है, बादलों का रूप धारण करता है, वर्षा या बर्फ के रूप में वापस पृथ्वी पर गिरता है और धरती पर नदी–नालों से बहकर वापस समुद्र में पहुंच जाता है, फिर वाष्प बनकर उड़ता है और पुनः धरती पर लौट आता है। सच पूछा जाए तो पानी ऐसी निधि है जिसे हम चाहकर भी नष्ट नहीं कर सकते। हम उसे दूषित कर सकते हैं जिसे कालान्तर में प्रकृति फिर शुद्ध कर लेती है। जो मीठा पानी पृथ्वी पर उपलब्ध है उसमें भी केवल 7 प्रतिशत ही तरल रूप में है बाकी बर्फ के रूप में जमा है जो ध्रुवों पर और ऊंचे पर्वतों पर स्थित है। 0.7 प्रतिशत पीने के योग्य पानी में 0.6 प्रतिशत हमें भू–जल के रूप में उपलब्ध है और बाकी 0.1 प्रतिशत नदियों–झीलों में और वाष्प के रूप में हवा में।

दुनिया भर में साल भर में कुल 10 से 12 हजार एम.एच.एम. पानी बरसता है। एक एम.एच.एम. का अर्थ है– एक मिलियन (दस लाख) हेक्टेयर भूमि पर एक मीटर गहराई जितना पानी। इसमें से भी 400 एम.एच.एम. भारत में बरसता है और 230 एम.एच.एम. वाष्प बन जाता है। 110 एम.एच.एम. सीधे नदियों में बह जाता है। 60 एम.एच.एम. सतह पर बह जाता है। यह पानी ही भूजल के स्तर को बनाता बढ़ाता है। यह पानी ही मानव के काम आता है। भारत में प्रति व्यक्ति 50 लीटर पानी का उपयोग प्रतिदिन करता है। इस हिसाब से लगभग डेढ़ एम.एच.एम. पानी पर्याप्त है जबकि प्रकृति हमें 60 एम.एच.एम. पानी देती है। अतः समस्या पानी की नहीं वरन् पानी के समुचित संचयन और वितरण की है। यदि पारंपरिक शैली में बारिश का पानी अधिकतम संग्रह कर लेने के व्यापक प्रयास हो तो दो चार वर्ष के कमजोर मानसून से पेयजल संकट तो खड़ा ही नहीं होगा, साथ ही भूजल की भरपाई का भी प्रबन्ध हो जाएगा। जल संरक्षण की जो व्यवस्था हमें परंपरा से प्राप्त थी, उसे हमने छिन्न–भिन्न कर दिया है। कैसे?

तालाबों व झीलों के किनारों पर आवासीय बस्तियां बस रही हैं। पानी प्रदूषित होता जा रहा है। आसपास के पेड़ नष्ट हो रहे हैं। ट्यूबवेलों के अमर्यादित उपयोग के कारण भूजल स्तर में गिरावट का एक सिलसिला शुरू हो गया है।

प्राचीनकाल में पानी को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त था, उसे "वरूणदेव" कहा गया है। किन्तु आज स्थिति इसके विपरीत है। यह दुर्भाग्य है कि स्वाधीनता के 58 वर्ष बाद भी हम पानी के संचयन और वितरण का कोई सुव्यवस्थित तरीका नहीं अपना पाएं। उससे भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह रही है कि परंपरा में पानी का जो प्रबन्ध था उसे भी जाने या अनजाने में छिन्न–भिन्न कर दिया। आजादी के साथ ही विकास के नये दौर में, पारंपरिक जल स्रोतों को जैसे अप्रासंगिक मान लिया गया। उनकी उपेक्षा की या उनमें हस्तक्षेप किया गया। पानी का जलदाय विभाग विक्रय करने लगा। जैसे पानी का भी किसी फैक्ट्री में भारी मात्रा में उत्पादन हो रहा हो। इस प्रक्रिया ने मानव का पानी से सम्बन्ध ही बदल दिया।

पुराने लोग भी यह मानते थे कि समस्या पानी की इतनी नहीं, जितनी उसके संकलन की है। लोग पानी का पूरी तरह से संचयन कर उसका उपयोग करते थे। तालाब, झीलें, कुएं, बावड़िया, नाले नालियां, टांके, कुँड, ढाका, बेरियां, सतही जल, छोटे कच्चे बांध और भूजल प्रबन्ध के प्रमुख घटक थे। कुएं बावड़ियां, भूजल स्रोत थे बाकी बरसात के पानी का जगह–जगह संग्रह कर उससे सिंचाई भी की जाती थी।

आज जब पीने के पानी की विकराल समस्या उत्पन्न हो गई है तो लोगों का ध्यान कुओं व बावड़ियों की ओर गया है। कुओं व बावडियों खोजकर उन्हें और गहरा किया गया। आज आवश्यकता इस बात की है कि उपरोक्त पारंपरिक जल स्रोतों के महत्व को समझकर उनकी सुरक्षा की जाए। जल स्रोतों के आस पास कल करखाने स्थापित नहीं किये जायें। इससे जल प्रदूषित होता है।

अतः जो जल वितरित किया जाए वह फिल्टर किया हुआ हो। जल स्रोतों में कूड़ा करकट, अपशिष्ट पदार्थ नहीं डाले जाएं। यह सत्य है कि शुद्ध वायु व शुद्ध पानी ही मानव को स्वस्थ जीवन प्रदान करते हैं।

(लेखक पूर्व शिक्षा उपनिदेशक एवं प्राचार्य (डाइट) हैं)

लोक प्रशासन

(हिन्दी माध्यम)

By **Atul Lohiya**

(A person who believes in scientific approach and hard work)

UGC-NET
QUALIFIED IN TWO SUBJECTS
(HISTORY & PUB. ADMINISTRATION)

लोक प्रशासन ही क्यों?

क्योंकि...

* आप एक लोक प्रशासक बनने जा रहे हैं ;
* परीक्षा की चुनौतियों एवं बदलती परिस्थितियों के अनुरूप अंकदायी विष
* इसकी महत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि जारी;
* भविष्य में सामान्य अध्ययन के अनिवार्य भाग के रूप में लोक प्रशासन को शामिल किए जाने की अधिकतम संभावना;
* वर्तमान समय में भी अंकों के खेल में सबसे आगे:
  आपका अध्ययन 600 अंकों के लिए, लेकिन आप हल कर सकेंगे एक हजार से अधिक अंकों के प्रश्न
  (वैकल्पिक विषय - 600 + निबंध - 200 + G.S. (Polity) - 90 + G.S. (Social Problem) + G.S. Current Affairs + साक्षात्कार
* ...और अब परिणाम में भी सबसे आगे:
  विगत वर्षों में लोक प्रशासन से बेहतर सफलता।
* लोक प्रशासन न पढ़ें, तब भी उसका 60-70 प्रतिशत सिलेबस सामान्य अध्ययन के भाग के रूप में हर परीक्षार्थी के लिए पढ़ना अनिवार्य;
* प्रत्येक परीक्षार्थी द्वारा जिज्ञासावश भी अधिकांश सिलेबस का अध्ययन, जैसे - भर्ती, प्रशिक्षण, अलघ कमेटी, वेतन एवं सेवा शर्तें आदि।

क्या है कोई विकल्प इससे बेहतर?

लोक प्रशासन का चयन - उचित निर्णय और व्यावसायिक दृष्टिकोण

तो आइये करें - लोक प्रशासन के अध्ययन की शुरूआत, 'अतुल लोहिया' के साथ।

अतुल लोहिया ही क्यों? क्योंकि...

* केवल हम कराते हैं लोक प्रशासन का सम्पूर्ण एवं समग्र अध्ययन;
* *UPSC* के साथ *UP, MP, Raj., Bihar, Uttaranchal, Jharkhand Chhattisgarh, Haryana, Himachal PCS* की भी तैयारी;
* बेहतर समझ, बेहतर नोट्स एवं बेहतर प्रश्न अभ्यास तथा लेखन-शैली के विकास के समन्वित दृष्टिकोण पर आधारित मार्गदर्शन। अध्यापन की शैली-विशिष्ट व वैज्ञानिक।
* लोक प्रशासन से संबंधित समसामयिक, किन्तु आवश्यक एवं उपयुक्त जानकारियों का समावेश।
* अनावश्यक तथ्यों के संकलन द्वारा लोक प्रशासन को बोझिल बनाने के स्थान पर एक सरल तथा सुरुचिपूर्ण विषय के रूप में समझाने पर विशेष बल।
* नोट्स - वैज्ञानिक तरीके से तैयार पूर्णतः संशोधित, परिमार्जित एवं परिवर्धित, (Pre. और Mains के लिए अलग-अलग) संदर्भ : 80 से 85 स्रोत;
* **केवल हमारे नोट्स से प्रतिवर्ष UPSC (Pre.) में 112 से 115 प्रश्न तथा मुख्य परीक्षा में 80 प्रतिशत से अधिक प्रश्न आए;**
* Revision Notes - चार्ट के रूप में उपलब्ध कराने वाले एकमात्र शिक्षक;
* हम देते हैं प्रत्येक क्लास का 40 प्रतिशत समय प्रश्न अभ्यास में और शेष समय विषय की बेहतर समझ एवं छात्रों की परिपक्व सोच को विकसित करने में।
* इसके अतिरिक्त आप प्राप्त कर सकते हैं – प्रतियोगी वातावरण, कुशल परिचर्चा समूह, और भी...

लोक प्रशासन

Mains के साथ-साथ
Pre. के लिये भी बेहतर विकल्प

'अतुल लोहिया'

शिक्षक, मार्गदर्शक और मित्र भी

पत्राचार पाठ्यक्रम भी उपलब्ध
(पूर्णतः संशोधित, परिमार्जित एवं परिवर्धित कम्प्यूटराइज्ड नोट्स)

MAINS - 2500/-
MAINS + PRE. - 3500/-
डाक खर्च - 200/- अतिरिक्त
Send DD/MO in favour of Atul Lohiya

नया सत्र : दिल्ली 31 मई व 21 जून
नामांकन जारीः 17 मई, 2006

नया सत्र : इलाहाबाद - 4 व 25 जून
नामांकन जारीः 21 मई, 2006

"PRABHA"

AN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

105, VIRAT BHAWAN (MTNL BLDG.), NEAR BATRA CINEMA, MUKHERJEE NAGAR, DELHI-110009
Phone : 27653498, 27655134, 32544250. Cell.: 9810651005 • e-mail: atullohiya@rediffmail.com
Branch : 305/250, COLONELGANJ, NEAR COLONELGANJ POLICE STATION, ALLAHABAD.

KH-06/06/03

लोक-संस्कारों में जल की भूमिका

श्यामसुंदर दुबे

जल, जीवन का पर्याय है। जल से ही जीवन का उद्‌भव है और जल से ही जीवन संवर्द्धित होता है। जल की स्तुति में मनुष्य ने अनेक गीत रचे हैं। लोक–विश्वासों में जल की महत्ता के अनेक प्रयोग, परंपरा से स्पष्ट होता है कि मनुष्य ने अपनी स्वास्थ्य–रक्षा, अपनी समृद्धि–संवर्द्धना एवं अपने कुशल–क्षेम के लिए जल की अनेक शक्तियों का बहुविधि आहवान किया है। लोक, अपने सभी शुभ अवसरों पर जल का पूजन करता है। ऐसे अवसरों पर जल केंद्रों की अभ्यर्थना–अभ्यर्चना का भी विधान है। नदी सरोवर, कुआं–बावड़ी का पूजन करके ही उनका जल, पवित्र कार्यों के लिए आहरित किया जाता है।

सद्यःप्रसूता जब प्रसूति कक्ष से पहली बार बाहर निकलकर घरेलू कार्यों में प्रवृत्त होती है, तब संपूर्ण उत्तर भारत में इस प्रसंग को एक उत्सव की तरह मनाया जाता है। इस अवसर पर प्रसूता कुएं पर जल भरने जाती है। उसके साथ गाती–बजाती स्त्रियों का समूह भी रहता है। कुंओं के घाट पर पहुंचकर पहले ये स्त्रियां कुएं का पूजन करती हैं। फिर प्रसूता स्त्री अपने स्तन से दूध की बूंदे कुएं के जल में निचोड़ती हैं। इस रस्म के बाद ही वह कुएं से जल भरती है। वह सिर पर जल से परिपूर्ण कलश लेकर घर लौटती है। द्वार के समक्ष खड़ी होकर वह अपने देवर का सिर से कलश उतारने हेतु आमंत्रित करती है देवर कलश उतारने आता है, किंतु वह इस कार्य के लिए नेग लेने के लिए अड़ जाता है। भाभी जब उसे उसकी मनचाही वस्तु नेग के रूप में प्रदान करती है तब वह भाभी के सर से कलश उतारता है। एक लोकगीत में इस लोक–प्रसंग की चर्चा है–"देवरा मोरे सिर से गगरी आकर आज उतारो। गगरी तोरी तबई उतर है, जब देही नेग हमारो।" देवर–भाभी का यह संवाद जल के साथ जुड़े हास–परिहास का प्रदर्शक भी है। शिशु जन्म के सभी संस्कार इसी जल से संपन्न होते हैं।

विवाह के अवसर पर भी पूजन–संस्कारों के लिए जिस जल का उपयोग होता है, वह भी समारोहपूर्वक नदी, सरोवर या कुंओं से लाया जाता है। विवाह–उत्सव में मातृ–पूजन के समय स्त्रियां जल आहरण के लिए जलाशय की ओर प्रस्थान करती हैं। इस यात्रा में अनेक तरह के लोकगीत गाती हैं। इन लोक गीतों में जल की प्रार्थना तो होती ही है। कुछ लोक–गीत हंसी–मजाक वाले भी गाये जाते हैं। ऐसे लोकगीतो में काम देवता को प्रसन्न करने के भाव विद्यमान रहते हैं। जल से चूंकि जीवन उत्पन्न हुआ है, इसलिए उसकी स्तुति तो होनी ही चाहिए, किंतु जीवन के सातत्य की जिम्मेवारी तो काम–चेतना ही निभाती है, इसलिए इस अवसर पर जल के साथ काम का स्मरण करना प्रासंगिक ही है। इस अवसर पर बुंदेलखंड में जो लोकगीत गाया जाता है, उसमें स्पष्ट किया गया है कि पनहारिन पानी भरने के लिए निकली है, किंतु मार्ग में एक अड़ियल सर्प उसको रोक रहा है। वह पनहारिन के शरीर से लिपटना चाहता है। "पनहारिन की गैल में जो पड़े अरंगी सांप री–जे नैना तोरे वान दी। काहे को जो लौटे–पौटे काहे, को मन्नाय, जे नैना तोरे वान री।"

पनहारिन जल–स्त्रोत का पूजन करती है। उसे विवाह में सम्मिलित होने का आमंत्रण देती है। फिर अपनी सात सहेलियों के साथ जल भरकर वापस होती है। इन सातों के सिर पर जल से भरी गगरियां रहती हैं। इसी जल का उपयोग, विवाह कार्य में प्रयोजनीय मृदभांडों के बनाने में किया जाता है। इसी जल से पूजन–सामग्री के रूप में प्रयुक्त होने वाले पकवानों को बनाया जाता है।

विवाह में सप्तपदी के समय पर जो पूजन–विधान किया जाता है, उसमें भी जल से भरे सात मृत्तिका कलशों का पूजन किया जाता है। ये सात मृत्तिका कलश वर–पक्ष की ओर से वधू–पक्ष को प्रदान किया जाते हैं। बारात के सात युवक इन सातों कलशों को वधु–पक्ष के मंडप में रखने जाते हैं। वधु पक्ष की स्त्रियां इन युवकों की बेलनों से पिटाई करती हैं इससे बचते–बचते या उसे सहते हुए ये युवक इन सात कलशों को विवाह मंडप में स्थापित कर ही देते हैं। सप्तपदी के पहले इन सात कलशों का पूजन किया जाता है। प्रकारांतर से यह पृथ्वी के सप्त समुद्रों का ही प्रतीक पूजन है। लोकाचार में यह विधान वर–वधू की जल–मिलाई है। जल ही इस तरह दो कुटुंबों को एक करता है।

सप्तपदी की रस्म में पंडित पूजन करने के लिए जिस जल का उपयोग दूर्वा या कुश से छिड़कने हेतु करता है, वह गंगा–जल होता है। लोक में हर जगह गंगाजल उपलब्ध नही रहता है। इसलिए इसके संदर्भ में भी एक नाटकीय प्रतीक परंपरा विकसित हो गयी है। समूचे मध्य भारत में यह परंपरा प्रचलित है। पूजन प्रारंभ होते ही नाई घराती और बरातियों से राम–राम करके उनकी जुहार करता हुआ गंगा–जल भरने के लिए गंगा–यात्रा पर चल देता है। गांव के ही जल स्रोत से यह अपना कलश भरकर लाता है और लौटकर फिर घरातियों–बरातियों को जुहार करता है। गंगा–जल लाने का नेग लेता है। पंडित विवाह की संपूर्ण पूजा–पद्धति में इसी जल का उपयोग करता है। लोक में गंगा–जल की महत्ता इस आख्यान से प्रतिपादित होती है।

सात समुद्रों और गंगा परिणय संस्कार में उपस्थित होना जल के साक्षी भाव का प्रकटीकरण है। कन्यादान के समय भी गड़वा ढ़राई की एक रस्म संपन्न होती है। इस रस्म में भी जल को साक्षी भाव से प्रस्तुत किया जाता है। इसके अंतर्गत वर की हथेली पर वधू की हथेली रखी जाती है। इन दोनों की हथेलियों के नीचे कन्या के माता–पिता की हथेलियां रहती है। कन्या की हथेली पर बेसन की हथलोई दूर्वा–कुश

रखा जाता है। पंडित कन्या–दान का संकल्प पढ़ता है, और वधू का भाई इन संयुक्त हथेलियों पर लोटे से गंगा–जल उड़ेलता है। इस जल–अर्पण विधि को ही गड़वा ढ़राई कहा जाता है।

जल जोड़ने का काम करता है। जल समाहित्य का पोषक है हमारे अधिकांश मेले और धार्मिक आयोजन जल–केंद्रों के आसपास ही आयोजित किये जाते हैं। जल हमारे देश के सास्कृतिक समन्वय का आधार रहा है। विभिन्न नदियों और सरोवरों से कावरों में जल लेकर विभिन्न क्षेत्रों में स्थित शिव लिंगों पर यह जल अर्पित किया जाता है। महाकवि तुलसीदास ने तो अपने 'रामचरितमानस' में उत्तर–दक्षिण को जोड़ने का आधार ही जल माध्यम में तलाशा। इस देश में बहुरंगी सांस्कृतिक परिवेश को एकता का सूत्र जल ही प्रदान करता है। श्री राम ने दक्षिण के समुद्र तट पर शिव की स्थापना करते हुए उद्घोषणा की कि जो हिमालय स्थित गंग्रोत्री से गंगा–जल लेकर, रामेश्वरम् के शिवलिंग पर अर्पण करेगा, वह मुक्ति का अधिकारी होगा। "जे जलु आनि चढ़ै हैं। ते सामुज्य मुक्ति नर लहि है।" इसी सूत्र के आधार पर असंख्य नर–नारी, गंगा जल को लेकर निरंतर इस देश की सुषुम्ना नाड़ी का स्पर्श करते हुए उत्तर दक्षिण की यात्रा करते रहते हैं। जल की इस शक्ति को अनुभव लोक ने कर लिया था, इसलिए उसका प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान जल के पूजन से प्रारंभ होता है।

जल –विहार से ही इस तरह के पूर्व कलश–यात्रा का आयोजन किया जाता है। जल–विहार से ही इस तरह के आयोजन का समापन होता है। यज्ञ या विवाह आदि की अवशिष्ट सामग्री जल में ही विसर्जित करने की सांस्कृतिक विधि है। इस तरह जल की सांस्कृतिक उपस्थिति जहां पूजा–स्थल को प्रभावी सौंदर्य प्रदान करती हैं, वहीं पूजन–पाठ एवं विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक आयोजनों में जल का होना वातावरण को विघ्नरहित बनाता है। जल न केवल भौतिक मैल को साफ करता है बल्कि वह परिवेश में निहित दुष्ट शक्तियों का भी समापन करता है–लोक की ऐसी मान्यता है।

मृत्यु जैसे अंतिम संस्कार में जल अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। शव–यात्रा में जल से भरा हुआ एक मृतिका घट भी ले जाया जाता है। शव को मुखाग्नि देने वाला सदस्य जल से भरा यह घट भी ले जाया जाता है। शव को मुखाग्नि देने वाला सदस्य जल से भरा यह घट अपने दाहिने कंधे पर रखता है। इस घट अपने दाहिने कंधे पर रखता है। इस घट में तत्काल इस तरह से छिद्र कर दिया जाता है कि उससे एक पतली जलधारा प्रवाहित होने लगे। इस घट को लेकर घट–धारी व्यक्ति चिता की सात परिक्रमा लगाता है। इन परिक्रमाओं के परिपथ में घट से अजस्र जल धारा नीचे गिरती रहती है। सातवीं परिक्रमा के बाद घट से को नीचे पटक कर फोड़ दिया जाता है। "फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तथ कथौ गियानी।" कबीर की काव्य पंक्ति के अनुसार देह का घट फूट गया। इसमें निहित आत्म–तत्व रूपी जल परमात्म–तत्व रूपी विराट सागर में समाहित हो गया है। शायद इसी तरह की प्रतीक भावना मरघट में फोड़े गए घट से भी प्रतिध्वनि होती है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक जल से जुड़े इन लोक–विश्वासों में निहित प्रतीक भावनायें जल की अनेक शक्तियों को उद्घाटित करती हैं।

(साभारः प्रेस सूचना कार्यालय)

मानवीय पहलों से भू -जल स्तर बढ़ाने के लिए उच्चाधिकार परिषद का गठन

हितधारकों में मानवीय प्रयासों से भू–जल स्तर को बढ़ाने की अवधारणा को लोकप्रिय बनाने और इस बारे में जागरूकता लाने के उद्देश्य से सरकार ने केंद्रीय जल संसाधन मंत्री, प्रो. सैफुद्दीन सोज की अध्यक्षता में एक उच्चाधिकार प्राप्त परिषद का गठन किया है। परिषद मानवीय पहल से भू–जल स्तर बढ़ाने के प्रयासों को बढ़वा देगी।

परिषद में केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय, शहरी विकास मंत्रालय, योजना आयोग तथा राज्य सरकारों को शामिल करने के अलावा इस विषय के विशेषज्ञों/किसानों के प्रतिनिधियों, राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) जैसे वित्तीय संस्थानों, ग्रामीण विद्युतीकरण निगम लिमिटेड, फिक्की, सीआईआई, एसोचेम जैसे उद्योग घरानों/उद्यमों तथा ओएनजीसी, कोल इंडिया लिमिटेड और गैर–सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों को सदस्य के रूप में शामिल किया गया है।

परिषद के विचारार्थ विषयों में प्राथमिकता वाले क्षेत्र विशेष के लिए प्रौद्योगिकी की पहचान करना और विभिन्न राज्यो तथा केंद्र सरकार के संगठनों, गैर–सरकारी संगठनों, उद्योगों और अन्य हितधारकों के बीच समन्वय स्थापित करना शामिल है। परिषद केंद्र और राज्यों के द्वारा इस दिशा में किए गए कार्यों की समीक्षा करेगी। परिषद को कार्यों तथा क्षेत्रों के आधार पर उप–समिति गठित करने का भी अधिकार होगा। समिति निजी भागीदारी सहित अन्य जरियों से वित्तपोषण की व्यवस्था पर भी ध्यान देगी। समिति जन–चेतना जागृत करने, शिक्षा, क्षमता विकास तथा कम लागत वाली प्रौद्योगिकी के विकास पर भी विचार करेगी।

जब भी जरूरी होगा, परिषद की बैठक बुलाई जाएगी, लेकिन समिति की इस वर्ष में कम से कम दो बैठकें होना जरूरी होगा।

भारत में ऊर्जा के स्रोत और परमाणु ऊर्जा समझौता

सूर्य भान सिंह

आर्थिक विकास और जीवन–स्तर बेहतर बनाने के लिए ऊर्जा एक अनिवार्य आवश्यकता है। समाज में ऊर्जा की बढ़ती हुई जरूरतों को उचित लागत पर पूरा करने के लिए ऊर्जा के पारम्परिक संसाधनों के विकास की जिम्मेदारी सरकार की है। ऊर्जा के पारंपरिक संसाधनों के विकास की जिम्मेदारी सरकार की है ऊर्जा के गैर–परम्परागत, वैकल्पिक, नए एवं फिर से उपभोग में लाए जाने वाले स्रोतों जैसे– सौर, पवन, एवं जैव ऊर्जा आदि के विकास के लिए लगातार ध्यान दिया जा रहा है। देश में ऊर्जा सुलभता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान के लिए परमाणु ऊर्जा के विकास को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा है। इसी के तहत प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह और अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश के बीच असैन्य परमाणु ऊर्जा सहयोग पर समझौता हुआ। यदि इसका समुचित अनुपालन हो गया तो देश में बिजली के संकट से निजात दिलाई जा सकेगी। इस समझौते के आधार पर भारत के पास ऐसी क्षमता हो जाएगी जिससे प्रत्येक गांव को भरपूर बिजली मिल सकेगी। समझौते के तहत भारत की गिनती अब न केवल विश्व के छः बड़े परमाणु देशों में होगी बल्कि उसे भरपूर मात्रा में परमाणु ईंधन मिलेगा जिससे बिजली का उत्पादन बहुत आसान हो जाएगा।

हमारे देश में कोयला, पानी और गैस से बिजली बनाई जाती है। यह बिजली न केवल मंहगी पड़ती है बल्कि उससे इतना उत्पादन भी नहीं हो पता जितना आवश्यक है। यूरेनियम आधारित परमाणु ईंधन न मिलने की वजह से भारत परमाणु बिजली घर नहीं लगा पा रहा है। भारत में झारखण्ड से थोड़ा सा यूरेनियम मिलता है जो बहुत खराब किस्म का है। इसलिए भारत उसका इस्तेमाल नहीं कर पाता है। वर्षों से भारत यह कोशिश करता रहा है कि उसे परमाणु ईंधन मिल जाये जिससे वह अपनी बिजली की समस्या हल कर सके, मगर ऐसा न होने से उसे ऊर्जा के लिए दूसरे साधनों पर निर्भर रहना पड़ता था। अब इस समस्या का हल निकलता नजर आ रहा है। भारत ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अरबो डालर का तेल विदेशों से खरीदता है। तेल के विश्व बाजार में चीन के बाद सबसे बड़ा खरीदार भारत है। जिसकी वजह से न केवल तेल के दाम बढ़ते जा रहे हैं बल्कि भारत का विदेशी मुद्रा भण्डार भी प्रभावित हो रहा है। आने वाले दिनों में डीजल एवं पेट्रोल इतना मंहगा होगा कि हमारा ऊर्जा संकट और अधिक बढ़ जाएगा। ऐसी हालत में यदि हम सस्ते दामों पर भरपूर बिजली पैदा कर सके जिससे कारखाने, रेलगाड़ियां और मशीनें, डीजल एवं पेट्रोल के बजाय सस्ती बिजली से चलाई जा सकें। भारत में कुल विद्युत उत्पादन क्षमता को नीचे तालिका से दर्शाया जा रहा है–

तालिका सं. – 1

भारत में बिजली उत्पादन क्षमता

	तापीय		पन + पवन		नाभिकीय		कुल मेगावाट
वर्ष	मेगावाट	प्रतिशत	मेगावाट	प्रतिशत	मेगावाट	प्रतिशत	
1991–92	48086	69.6	19194	27.8	1785	2.6	69065
1995–96	60083	72.1	20985	25.2	2225	2.7	83293
1999–2000	70493	71.8	25012	25.5	2680	2.7	98185
2003–04	77974	69.2	31995	28.4	2720	2.4	112689

स्रोतः – विद्युत मंत्रालय, आर्थिक समीक्षा – 2004–05

उपरोक्त तालिका में 1991–92 में कुल बिजली उत्पादन 69065 मेगावाट है जिसमें 69.6 प्रतिशत ताप बिजली से, 27.8 प्रतिशत पन बिजली व पवन ऊर्जा से तथा 2.6 प्रतिशत बिजली उत्पादन परमाणु ऊर्जा से होता है। 2003–04 में कुल उत्पादन बढ़कर 112689 मेगावाट हो गया है जिसमें 69.2 प्रतिशत ताप बिजली से 28.4 प्रतिशत पन बिजली व पवन ऊर्जा से तथा 2.4 प्रतिशत उत्पादन परमाणु ऊर्जा से होता है। 2004–05 के लिए क्षमता वृद्धि कार्यक्रम में 5245.5 मेगावाट का लक्ष्य रखा गया है। 2012 तक अनुमानित विद्युत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अगली दो पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान 100000 मेगावाट अतिरिक्त विद्युत क्षमता बढ़ाने की आवश्यकता है जिसमें दसवीं योजना में 41110 मेगावाट तथा शेष ग्यारहवीं योजना के दौरान पूरा किया जाएगा। दसवीं योजना के दौरान केंद्रीय क्षेत्र का योगदान 22832 मेगावाट, राज्य क्षेत्र का 11157 मेगावाट तथा निजी क्षेत्र का 7121 मेगावाट होगा। 25051 मेगावाट से अधिक के उपक्रम निर्माणाधीन हैं तथा 6000 मेगावाट के उपक्रम को निर्माण के लिए आवश्यक मंजूरी मिल चुकी है। नीचे तालिका में भारत में विद्युत उपयोग प्रतिशत में दिया गया है–

उपर्युक्त तालिका में 1999–2000 में विद्युत उपभोग घरेलू में 22.2 प्रतिशत, वाणिज्य में 6.3 प्रतिशत, उद्योग में 34.8 प्रतिशत, कर्षण में 2.6 प्रतिशत, कृषि में 29.2 प्रतिशत एवं अन्य में 4.9 प्रतिशत हुआ है जब कि 2003–04 में विद्युत उपभोग घरेलू में 24.9 प्रतिशत, वाणिज्य में 7.8

प्रतिशत, उद्योग में 34.5 प्रतिशत, कर्षण में 2.6 प्रतिशत, कृषि में 24.1 प्रतिशत एवं अन्य में 6.1 प्रतिशत उपयोग हुआ है कुल विद्युत उत्पादन का 80 प्रतिशत से अधिक उपयोग उद्योग, कृषि एवं घरेलू में होता है।

भारत में ऊर्जा के स्रोत

कोयला – आधुनिक संसार में कोयला सर्वप्रथम ऊर्जा का साधन है। कोयला आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का आधार–स्तम्भ है। यही कारण है कि कोयले के खानों के चारों तरफ अधिकांश उद्योग हैं। भारत के खनिज पदार्थों में कोयले का महत्व सर्वाधिक है। कोयले का उपयोग रेल, ताप शक्ति केन्द्र, लौह इस्पात उद्योग, रासायनिक उत्पादन तथा व्यक्तिगत उपयोग आदि में किया जाता है। भारतीय भू–गर्भ सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 220980 मिलियन टन कोयले के भण्डार है। अतः इस महत्वपूर्ण प्राकृतिक सम्पदा जो ऊर्जा का एक मुख्य स्रोत है। हमारे देश में कोयले का उपलब्ध भण्डार मध्य प्रदेश में 106 करोड़ टन एवं अरूणांचल प्रदेश में 9 करोड़ टन है। विश्व की कुल ऊर्जा उपभोग में कोयले का योगदान लगभग 22 प्रतिशत है। भारत में कुल विद्युत उत्पादन में कोयले का योगदान 70 प्रतिशत है।

पेट्रोलियम – पेट्रोलियम एवं डीजल उत्पाद का उपभोग कार, बस, ट्रक एवं इंजनों को चलाने के लिए किया जाता है। तेल के मुख्य उत्पादन पेट्रोल, डीजल, गैसोलीन गैस, कोकट् वैक्स तथा जलाने के लिए मिट्टी का तेल आदि हैं। आज ऊर्जा के क्षेत्र में खनिज तेल एंव गैस का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग में इनकी उपयोगिता लगातार बढ़ती जा रही है। पेट्रोलियम ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होने के कारण मानव–जीवन की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बना हुआ है। कृषि, उद्योग, एवं परिवहन आदि विभिन्न क्षेत्रों में पेट्रोलियम के बिना प्रगति की आशा नहीं की जा सकती है। पेट्रोलियम वर्तमान समय में आर्थिक विकास की मुख्य शक्ति बन गया है। 1950–51 में देश में कच्चे तेल का उत्पादन 30 लाख टन था जो 2002–03 में बढ़कर 3.3 करोड़ टन हो गया है जबकि तेल की खपत 7.9 करोड़ टन थी। देश में तेल संबंधी मांग को पूरा करने के लिए हमें तेल का आयात करना पड़ता है। वर्तमान समय में पेट्रोलियम का 50 प्रतिशत उपभोग परिवहन क्षेत्र में, 35 प्रतिशत घेरलू क्षेत्र में, 10 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र में तथा 5 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में होता है। इस प्रकार ऊर्जा के इस स्रोत का सर्वाधिक उपभोग यातायात के क्षेत्र में हो रहा है। अनुमान है कि 2006–07 में देश में कुल पेट्रोलियम की मांग 134.6 मिलियन टन होगी।

विद्युत – कोयला एवं तेल जैसे ऊर्जा के साधनों की सीमित उपलब्धि को देखते हुए ऊर्जा के विद्युत स्रोतों को अधिक महत्व दिया जा रहा है। विद्युत ऊर्जा प्राप्ति का सबसे उपयोगी एवं सुविधाजनक साधन है। यही कारण है कि ऊर्जा के अन्य साधनों की तुलना में इसकी मांग तेजी से बढ़ रही है। ऊर्जा का यह साधन उद्योग कृषि, परिवहन एवं घरेलू क्षेत्र की कार्यों को सुगम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 1947 तक देश में कुल विद्युत उत्पादन क्षमता 19 लाख किलोवाट थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात पहली पंचवर्षीय योजना के अन्त में भारत में विद्युत उत्पादन क्षमता 34 लाख किलोवाट थी जो आठवीं योजना में 38369 मेगावाट हो गयी। भारत में कुल स्थापित विद्युत क्षमता 2001–02 में एक लाख 5 हजार मेगावाट थी जब कि विद्युत आपूर्ति 68250 मेगावाट तथा वास्तविक मांग 76500 मेगावाट है। विद्युत सर्वेक्षण के अनुसार 39.3 प्रतिशत औद्योगिक क्षेत्र में, 24.7 प्रतिशत कृषि क्षेत्र में, 23.7 घरेलू क्षेत्र में 6.1 प्रतिशत वाणिज्यिक क्षेत्र में तथा 6.2 प्रतिशत अन्य कार्यों के लिए खपत होती है।

परमाणु एवं नाभिकीय ऊर्जा – भारत परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में स्वयं अपनी परमाणु प्रौद्योगिकी विकसित कर रहा है तथा परमाणु ईधन चक्र को पूरी चलाने में समर्थ है। 1954 में परमाणु ऊर्जा विभाग की स्थापना की गयी जो कि परमाणु ऊर्जा की परियोजना सफलतापूर्वक संचालन द्वारा देश की ऊर्जा मांग को पूरा करने में सहायता की जा सकती है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 2050 तक कोयला खत्म हो जायेगा तथा खनिज तेल का भण्डार बहुत सीमित है। ऐसी स्थिति में सिर्फ नाभकीय ऊर्जा के द्वारा बिजली की आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। परमाणु ऊर्जा

तालिका सं. – 2

भारत में विद्युत उपभोगता (प्रतिशत में)

वर्ष	घरेलू	वाणिज्य	उद्योग	कर्षण	कृषि	अन्य
1999–2000	22.2	6.3	34.8	2.6	29.2	4.9
2000–01	23.9	7.1	34.0	2.6	26.6	5.6
2001–02	24.7	7.5	33.3	2.5	25.3	6.7
2002–03	24.6	7.5	33.9	2.6	24.9	6.5
2003–04	24.9	7.8	34.5	2.6	24.1	6.1

स्रोतः– विद्युत मन्त्रालय, आर्थिक समीक्षा 2004–05.

पैदा करने के लिए अभी जल्द ही अमेरिका से परमाणु ऊर्जा समझौता किया गया है ताकि भारत में ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति की जा सके।

सौर ऊर्जा – सूर्य असीमित ऊर्जा का स्रोत है। जब तक सौर मण्डल रहेगा तब तक इसके समाप्त होने की सम्भावना नहीं है। यदि सूर्य से ऊर्जा प्राप्त की जाये तो बड़ी मात्रा में ऊर्जा संबंधी समस्या हल की जा सकती है। यह एक निःशुल्क प्राकृतिक देन है जिस पर किसी का एकाधिकार नहीं है। यही कारण है कि संसार के सभी देश सौर ऊर्जा का प्रयोग करने के लिए वैज्ञानिक प्रयास कर रहे हैं। हमारे देश में सौर ऊर्जा प्राप्त करने लिए सूर्य की किरणों को सीधे विद्युत धारा में परिवर्तित करने का प्रयास किया जा रहा है। वर्तमान में सौर ऊर्जा को संचित करने के लिए बैटरियों का प्रयोग किया जा रहा है। सौर ऊर्जा के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में पम्प चलाने, सड़को पर बत्तियां जलाने, खाद्य पदार्थ को सुखाने, भोजन पकाने, पानी को गरम करने का कार्य किया जा रहा है जिससे बड़ी मात्रा में ऊर्जा के व्यापारिक स्रोतों की बचत की जा सकती है।

पवन ऊर्जा – पवन ऊर्जा का उपयोग विद्युत पैदा करने, कृषि कार्य हेतु पानी निकालने जलमार्ग में नौकाओं के संचालन करने आदि में किया जाता है। पवन चक्कियों की सहायता से पांच हार्स पावर विद्युत पम्प सेटों के समान कुओं से पानी निकाला जाता है। ये पवन चक्कियां तेज तथा कम हवाओं में भी कार्य करती हैं। आज देश के विभिन्न राज्यों उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु में पवन विद्युत को बढ़ावा दिया जा रहा है। देश में पवन ऊर्जा के समुचित उपयोग के लिए तेजी से वैज्ञानिक प्रयास एवं अनुसंधान किए जा रहे हैं। आशा है कि भविष्य में पवन ऊर्जा से ऊर्जा संकट की समस्या से छुटकारा दिलाने में सहायक होगा। इस समय 2483 मेगावाट पवन ऊर्जा पैदाकर विश्व में भारत पांचवे स्थान पर हो गया है।

कूड़े–कचरे से ऊर्जा – शहरों में एकत्रित होने वाले कूड़े–कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने का एक वैकल्पिक स्रोत वैज्ञानिकों ने खोज निकाला है। भारत में कूड़े–कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने का सफल प्रयास हो गया है। इस ऊर्जा से गैस व विद्युत प्राप्त होती है, किसानों को खाद प्राप्त होती है एवं नगरों में गन्दगी से छुटकारा मिलता है। विश्व के कुछ विकसित देशों रूस, जापान एवं इंग्लैंड आदि में कूड़े–कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने में काफी सफलता प्राप्त हुई है। भारत में दिल्ली शहर के तिमारपुर में कूड़े–कचरे से ऊर्जा प्राप्त करने का कार्य चल रहा है जिसमें डेनमार्क कम्पनी के सहयोग से 3.75 मेगावाट क्षमता का संयंत्र लगाया गया है।

बायो–गैस ऊर्जा – भारत में बायो–गैस ऊर्जा के स्रोत मुख्यतया ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान हैं क्योंकि यह संयंत्र गोबर के द्वारा लगाया जाता है। इस प्रणाली से ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन का वैकल्पिक स्रोत प्राप्त होने के साथ–साथ अच्छी कोटि की खाद भी प्राप्त होती है। इस प्रौद्योगिकी से धुआं रहित ईंधन की आवश्यकता की पूर्ति भी होती है। आज देश के अन्दर गोबर गैस संयंत्रों का निर्माण निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा किया जा रहा है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में बायो–गैस ऊर्जा संयंत्र काफी लोकप्रिय होता जा रहा है।

परमाणु ऊर्जा समझौतों से लाभ – भारत और अमेरिका के बीच असैन्य परमाणु ऊर्जा सहयोग पर जो समझौता भारत और अमेरिका के बीच हुआ है उसे हर दृष्टि से ऐतिहासिक कहा जा सकता है। समझौते के तहत भारत को अपने नाभिकीय हथियार बनाने को कार्यक्रम जारी रखने की खुली छूट दी गई है। भारत को सिर्फ अपने परमाणु संयंत्र सायरस को बन्द करना होगा जो 1954 से चल रहा है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के लागू होने से पहले स्थापित किया गया था। भारत को अपनी इच्छानुसार ही अपनी परमाणु संयंत्रों को अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा ऐजेन्सी की निगरानी में देने का अधिकार मिला है। यही कारण है कि परमाणु ऊर्जा समझौते से भारतीय वैज्ञानिक भी उत्साहित हैं कि इस समझौते से भारत के नाभिकीय कार्यक्रम पर रोक नहीं लगेगी तथा भारत के नागरिक परमाणु संयंत्रों को ईंधन आपूर्ति की गारन्टी भी दी गई है। भारत ने कृषि, संचार, यातायात एवं अन्य क्षेत्रों में सराहनीय प्रगति की है। अगर भारत को घरेलू उत्पाद की वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त करना है तो उसे उसी अनुपात में ऊर्जा की आपूर्ति करने की जरूरत होगी। कोयला, तेल, गैस, तथा बिजली जैसी व्यावसायिक ऊर्जा की आपूर्ति परमाणु ऊर्जा समझौता से काफी सहयोग मिलेगा।

ऊर्जा मूलभूत सुविधा का एक अहम हिस्सा है। अतः यह सुनिश्चित करना होगा कि ऊर्जा निरन्तर उपलब्ध होती रहेगी। हमें ऊर्जा निरन्तर प्राप्त हो इसका मूलमन्त्र यही है कि इसके स्रोतों का समझदारी से सदुपयोग हो तथा ऊर्जा की क्षमता के अनुसार उसका पूरा–पूरा उपयोग हो तभी हम ऊर्जा से अधिकतम लाभ उठा सकते हैं। आज विश्व राजनीति में अमेरिका की मौजूदा भूमिका को देखते हुए भारत का हित इसी में है कि वह अपने रिश्ते अमेरिका से प्रगाढ़ करे। जार्ज बुश की भारत यात्रा से एक ओर जहां यह साफ हुआ कि अमेरिका भारत को अपने साथ लेकर चलना चाहता है। भारत पहला ऐसा देश है जो एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर किये बगैर परमाणु ऊर्जा संबंधी तकनीक अमेरिका और अन्य पश्चिमी देशों से हासिल करने में समर्थ होगा। भारत को यह तकलीफ देने के लिए अमेरिका को अपने कानून में संशोधन करना होगा। यदि इस समझौता का क्रियान्वयन सही रूप से हो जाये तो भारत को ऊर्जा संबंधी आवश्यकता की पूर्ति आराम से की जा सकती है।

(लेखक एमएमपीजी कालेज, कालाकांकर (उ.प्र.) के वाणिज्य विभागाध्यक्ष एवं रीडर हैं)

जैव-ईंधन : ऊर्जा का बेहतर विकल्प

श्याम सुन्दर सिंह चौहान और दीपा रावत

तेजी से विकसित हो रही भारतीय अर्थव्यवस्था में ऊर्जा संसाधनों की मांग में वृद्धि होना स्वाभाविक है। किन्तु उस अनुपात में ऊर्जा की आपूर्ति न हो पाने से आर्थिक विकास में बाधा पहुंचाती है। देश के लगभग सारे राज्यों में बिजली की मांग उसकी आपूर्ति से कहीं अधिक हैं। ईंधन के दूसरे विकल्प कोयला का प्रयोग पर्यावरणीय कारणों से अपेक्षाकृत कम ही किया जाने लगा है। कोयले की सर्वाधिक खपत करने वाली भारतीय रेल में अब कोयले की खपत शून्य है। दूसरी ओर भारतीय रेल देश में डीजल की सबसे अधिक खपत करने वाला अकेला उपभोक्ता है। प्रमुख रेल मार्गों का विद्युतीकरण करके भारतीय रेल डीजल पर अपनी निर्भरता को कम से कम करना चाहती है लेकिन इसके लिए विद्युत की अबाध आपूर्ति अपने आप में एक बड़ा लक्ष्य है। भारत सहित विश्व के अनेक देश अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की बढ़ती कीमतों से चिन्तित है तथा ऊर्जा के ऐसे वैकल्पिक स्रोत की खोज, उत्पादन एवं उपभोग हेतु प्रयासरत है जो सस्ता एवं पर्यावरण मित्रवत हो।

ऊर्जा संकट की आहट – आर्थिक उदारीकरण से भारत का बाजार देशी–विदेशी गाड़ियों–कारों, एस.यू.वी. तथा वाणिज्यिक वाहनों से पट गया है। इससे पेट्रोल एवं डीजल की खपत में भारी वृद्धि हुई है। कृषि यन्त्रीकरण ने भी डीजल की खपत में वृद्धि की है। इन कारणों से भारत में तेल की अनुमानित वार्षिक खपत 114 मिलियन टन है जिसमें से 112 मिलियन टन केवल परिवहन क्षेत्र द्वारा उपभोग किया जाता है। कुल खपत का 75 प्रतिशत पेट्रोलियम विदेशों से आयात किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की बढ़ती कीमतों से भारत जैसे विकासशील देशों में ऊर्जा संकट उत्पन्न होने के कगार पर है। वर्ष 2002–03, 2003–04 एवं 2004–05 में कच्चे तेल की औसत वार्षिक कीमतें क्रमशः 25 अमरीकी डॉलर, 29 अमरीकी डॉलर एवं 37 अमरीकी डॉलर प्रति बैरल थी। वर्ष 2005–06 के प्रारम्भ में कच्चे तेल का मूल्य 50 अमरीकी डॉलर प्रति बैरल के आस–पास था जो 4 जुलाई 2005 को बढ़कर 58.75 अमरीकी डॉलर प्रति बैरल हो गया। 29 अगस्त, 2005 को कच्चे तेल की कीमत बढ़कर 60 अमरीकी डॉलर प्रति बैरल तक हो गयी।

कच्चे तेल की बढ़ती कीमतों से भारत का तेल आयात बिल वर्ष 2004–05 में 42 प्रतिशत बढ़कर 1,16,806 करोड़ रुपए हो गया जिसके वर्ष 2005–06 में 48 प्रतिशत बढ़कर 1,72,326 करोड़ रुपए हो जाने का अनुमान है। तेल आयात पर 55,520 करोड़ रुपए (12.8 बिलियन डॉलर) का अतिरिक्त बहिर्गमन वर्ष 2005–06 में निर्यात में होने वाली 8 बिलियन डॉलर की वृद्धि लगभग 4.8 बिलियन डॉलर का व्यापार घाटा छोड़ेगा।

घरेलू स्तर पर अर्थव्यवस्था पर तेल की बढ़ती खपत तथा तेल आयात बिल की वृद्धि का व्यापक प्रभाव देखने को मिलेगा। सरकार पर तेल सब्सिडी का बोझ लगातार बढ़ता जा रहा है। मिट्टी के तेल का बिक्री मूल्य 9.02 रुपये प्रति लीटर है और इस पर सरकार 11.45 रुपये प्रति लीटर की सब्सिडी देती है। इस प्रकार मिट्टी के तेल पर सब्सिडी 127 प्रतिशत तथा इसी के समानान्तर रसोई गैस पर 32.64 प्रतिशत है। पेट्रोलियम क्षेत्र में प्रशासित मूल्य प्रणाली को समाप्त करते समय केन्द्र सरकार ने तय किया था कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत आपूर्ति किए जाने वाले मिट्टी के तेल पर सब्सिडी 33 प्रतिशत के स्तर पर और रसोई गैस पर 15 प्रतिशत के स्तर पर बनाए रखी जाएगी। लेकिन राजनीतिक कारणों से सरकार मिट्टी के तेल एवं रसोई गैस के निर्गत मूल्य में वृद्धि नहीं कर पायी है। इससे तेल बेचने वाली कम्पनियों को भारी घाटा उठाना पड़ रहा है। कीमतों में बढ़ने की यही प्रवृत्ति रही तो वर्ष 2005–06 में तेल विपणन कम्पनियों की अल्प–वसूली 40000 करोड़ रुपये के स्तर को पार कर जाएगी, जो वर्ष 2004–05 में 19910 करोड़ रुपये के स्तर पर थी (सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत आपूर्ति किए जाने वाले मिट्टी के तेल पर 17720 करोड़ रुपये तथा पेट्रोल–डीजल पर 2190 करोड़ रुपये)। जहां तक भारत के पास उपलब्ध जीवाश्म ईंधन–पेट्रोलियम के ज्ञात भण्डारों का प्रश्न है तो ये भण्डार मात्र 2021 तक ही चलने वाले हैं।

ऊर्जा संकट का समाधान – लोकतांत्रिक शासन प्रणाली वाले देश भारत में ऊर्जा संकट का समाधान तेल की राशनिंग अथवा कोटा प्रणाली में नहीं हो सकता। पेट्रोलियम मंत्रालय की स्थायी संसदीय समिति ने इसके लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों को विकसित किए जाने की सलाह दी है। इस दृष्टि से निम्नलिखित विकल्पों पर तत्काल ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

- कोयले के ज्ञात भण्डारों को ध्यान में रखते हुए इसके निकर्षण एवं उपयोग को बढ़ावा दिया जाए, लेकिन इससे होने वाले वायु प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए निम्नलिखित उपाय भी अपनाए जाने चाहिए :–
- कोयले आधारित मीथेन गैस उत्पादन में वृद्धि के लिए विशिष्ट योजनाएं बनाना तथा उन्हें यथाशीघ्र कार्यान्वित करना,
- कोयले का गैसीयकरण (कोल गैसीफिकेशन)
- कोयले को स्वच्छ करने की प्रौद्योगिकी का विकास
- पुनः प्रयोग योग्य ऊर्जा संसाधनों की विशाल सम्भाव्यता का विदोहन करना, जैसे : सौर ऊर्जा; पवन ऊर्जा और जैव ऊर्जा
- परमाणु विद्युत उत्पादन हेतु नए प्लांटों की स्थापना।

जैव–ईंधन : सम्भाव्यता एवं आर्थिक व्यवहार्यता – भारत के भौगोलिक संसाधनों, विशेष रूप से कृषि संसाधनों, को देखते हुए जैव ईंधनों का प्रयोग पर्यावरणीय सुरक्षा तथा ऊर्जा संकट के समाधान एवं कृषकों की आय में सकारात्मक रूप से वृद्धि तीनों ही दृष्टिकोणों से एक अति बेहतर विकल्प है। विकसित देशों में जैव–ईंधन के रूप में एथनॉल (पेट्रोल के साथ मिलाकर) तथा जैट्रोफा तेल और पौंगैमिया तेल (डीजल के साथ मिलाकर) का प्रयोग जैव–ईंधन के रूप में किया जा रहा है।

- ब्राजील में ऑटोमोबाइल ईंधन में 22–24 प्रतिशत तक एथनॉल मिलाया जाता है।
- यूरोपीय संघ में परिशोधित रेपसीड आयल को डीजल में मिलाकर बेचा जाता है।
- संयुक्त राज्य अमरीका में मक्का से परिष्कृत एथनॉल तथा परिशोधित सोयाबीन आयल को पेट्रोलियम ईंधन में मिलाया जाता है।

भारत एक प्रमुख गन्ना उत्पादक देश है। चीनी के उत्पादन में एक उप–उत्पाद के रूप में शीरा प्राप्त होता है, जिससे एथेनाल बनायी जाती है। इस आशय की परियोजनाएं पंजाब, चण्डीगढ़, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दमन एवं दीव, महाराष्ट्र, गोवा, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पाण्डिचेरी में चल रही है। इन परियोजनाओं में एथनॉल को पेट्रोल के साथ मिलाकर बायो–पेट्रोल के रूप में आपूर्ति की जा रही है।

बायो–डीजल – बायो–डीजल एक स्वच्छ वैकल्पिक ईंधन है, जो घरेलू स्तर पर उत्पादित, पुनः प्रयोज्य संसाधनों से उत्पादित किया जाता है। बायो–डीजल में कोई जीवाश्म ईंधन जैसे कि पैट्रोलियम उत्पाद नहीं होता, लेकिन इसे जीवाश्म स्रोतों से प्राप्त किसी भी सांद्रता के डीजल के साथ मिलाकर बायो–डीजल मिश्रण बनाया जा सकता है। इसे नाममात्र के या बिना किसी यांत्रिक परिवर्तन के कम्प्रेशन–इग्नीशन (डीजल इंजनों) में प्रयुक्त किया जा सकता है। बायो–डीजल का प्रयोग सरल है। यह जैविक रूप से विघटनीय है तथा बुनियादी रूप से सल्फर यौगिकों एवं एरोमैटिक योगिकों से मुक्त है। यहां एक तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह यह कि जब रूडोल्फ ने प्रोटोटाइप डीजल इंजन अभिकल्पित किया था, तो उसे सर्वप्रथम मूंगफली के तेल से ही चलाया था। उसकी योजना थी कि डीजल इंजनों को विभिन्न प्रकार के वनस्पति तेलों से ही चलाया जाय। लेकिन जब अपेक्षाकृत सस्ता एवं अधिक दक्ष पैट्रोलियम डीजल बाजार में आ गया, तो वही (डीजल) पसंदीदा ईंधन बन गया।

जहां तक बायो–डीजल का प्रश्न है तो इसमें ट्रान्सेस्टेरी– फिकेशन द्वारा परिशोधित वेजीटेबल आयल–कॉर्न ऑयल, सोयाबीन ऑयल, जैट्रोफा ऑयल, पोंगेमिया ऑयल, पशुजनित चर्बी, री–सायकिल्ड रेस्टोरेन्ट ग्रीज तथा कैस्टर ऑयल को डीजल में मिलाकर ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जैव–ईंधन का उत्पादन दो चरणों में पूरा होता है।

प्रथम चरण – तेल मिल में तिलहनों की पेराई करके तेल निकालना। खली का प्रयोग खेतों में खाद के रूप में किया जाता है।

द्वितीय चरण – ट्रान्सेस्टेरीफिकेशन नामक रासायनिक क्रिया से वेजीटेबल ऑयल को परिशोधित करके उसमें से मुक्त वसीय अम्लों को बाहर निकालना। ऐसा करने के लिए वेजीटेबल तेल में एक अल्कोहल–मेथेनॉल तथा एक बेस जैसे पोटेशियम हाइड्राक्साइड मिलाया जाता है। इस प्रक्रिया में गिलिसरीन तथा उर्वरक उप–उत्पाद के रूप में एवं वसीय ईस्टर (जैव–ईंधन) मुख्य उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है। इस प्रकार से प्राप्त वसीय ईस्टर को पारम्परिक डीजल के साथ मिलाकर या शत–प्रतिशत स्वच्छ ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। बायो–डीजल का रासायनिक नाम मिथायल ईस्टर है। बायो–डीजल को लम्बी श्रृंखला वाले मोनो एल्कायल ईस्टर के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो वेजीटेबल तेलों तथा पशुजनित चर्बी से निकाला जाता है। यह डीजल इंजनों में ईंधन के रूप में प्रयुक्त किए जाने हेतु अमरीका के कठोर एएसटीएम डी**6751** मानकों को पूरा करते हैं। यह अमरीका के पर्यावरण संरक्षण निकाय में बिक्री एवं वितरण हेतु एक वैधानिक मोटर ईंधन के रूप में पंजीकृत है। ज्ञातव्य है कि चालीस के दशक में वैज्ञानिकों ने इसी विधि का प्रयोग करके विस्फोटक बनाने के लिए गिलिसरीन का उत्पादन किया था।

बायो–डीजल पर्यावरण को अपेक्षाकृत कम क्षति पहुंचाता है क्योंकि इसे जैविकीय रूप से विघटित हो सकने वाले पुनः प्रयोज्य स्रोतों से बनाया जाता है। बायो–डीजल जीवाश्म डीजल की तुलना में पर्यावरण–जीव–जंतुओं एवं वनस्पतियों – के लिए घातक पदार्थ काफी कम मात्रा में उत्सर्जित करता है। इसके जहरीले प्रभाव साधारण नमक से भी कम है। जमीन पर गिरने पर यह चीनी से भी अधिक तेजी से जैव–विघिटित होता है। चूंकि इसका विनिर्माण पुनः प्रयोज्य स्रोतों – वेजीटेबल तेलों तथा पशु जनित चर्बी से किया जाता है इसलिए यह आयातित तेल ईंधन पर निर्भरता को कम करते हुए ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आय एवं रोजगार के नए अवसर सृजित करता है।

भारत में प्रमुख कृषि उत्पादों – गेहूँ तथा चावल एवं अन्य अनाजों की कीमतें संतृप्त स्तर पर पहुंच गयी हैं। उनमें और अधिक वृद्धि संभव प्रतीत नहीं होती है। दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में आयी तेजी से अर्थव्यवस्था भारी आर्थिक दबाव में है, ऐसी परिस्थितियों में बायो–डीजल का उत्पादन एवं उपभोग एक अति बेहतर विकल्प है। इसका विनिर्माण विद्यमान प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिक उत्पादन क्षमता के साथ किया जा सकता है। इससे अल्प काल में ही ऊर्जा आपूर्ति में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है।

अमरीका के कृषि विभाग द्वारा किए गए एक अध्ययन में पाया गया कि 760 मिलियन लीटर सोयाबीन आधारित बायो–डीजल की वार्षिक वृद्धि से सन् 2010 तक संचयी रूप से फसलों से कुल नकदी प्राप्तियों में 2 बिलियन अमरीकी डॉलर तक की वृद्धि होगी। इससे कृषि जनित आय में औसतन 300 मिलियन अमरीकी डॉलर वार्षिक तक की वृद्धि हो जाएगी।

वर्तमान में विकसित देशों में बायो–डीजल अत्याधिक परीक्षण किया गया वैकल्पिक ईंधन है। अनेक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि

बायो–डीजल जीवाश्म डीजल की ही भांति ऊर्जा शक्ति प्रदान करते हुए भी जीवाश्म डीजल की तुलना में कम घातक है। अमरीका के कृषि विभाग, ऊर्जा विभाग, स्टेनाडायन ओटोमोटिव कार्पोरेशन, लोवलैव रेस्पिरेटरी रिसर्च इंस्टीट्यूट तथा साउथवेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा किए गए अध्ययनों में मानव स्वास्थ्य सहित अन्य पर्यावरणीय घटकों पर बायो–डीजल के प्रभाव सामान्य डीजल की तुलना में काफी कम घातक पाये गए हैं।

बोटनिकल सर्वे आफ इंडिया ने भारत में पादपों एवं पेड़ों की ऐसी 400 से अधिक प्रजातियाँ खोजी हैं जिनके बीजों से तेल निकालकर उसका प्रयोग जैव–ईंधन के रूप में किया जा सकता है। किन्तु इनमें से सर्वाधिक उपयुक्त प्रजातियां जैट्रोफा क्यूर्कस (रतनजोत) तथा पोंगेमिया पिन्नैटा (करंज), हेविया ब्राजीलेंसिस (रबर), मधुका इंडिका (महुआ) हैं। जैट्रोफा एक कड़ा पादप है जो झाड़ियों के रूप में अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में उगता है। इस पादप से प्राप्त होने वाले बीजों में 25–30 प्रतिशत तक तेल निकाला जा सकता है। इसके विपरीत पोंगेमिया पारम्परिक प्रजाति का एक पेड़ है जो सात–आठ वर्ष के भीतर फलियां देने लगता है। फलियों से बीज निकालकर उनसे तेल निकाला जाता है। पोंगेमिया मैदानी एवं पठारी इलाकों में समान रूप से उगाया जाता है। भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर के मेकेनिकल इंजीनियरिंग विभाग में कार्यरत प्रो. यू. श्रीनिवास के अनुसार पोंगेमिया तेल से खेती के उपकरण चलाए जा सकते हैं एवं बिजली पैदा की जा सकती है। पोंगेमिया की खेती इसकी नाइट्रोजन–फिक्सिंग क्षमता के कारण की जाती है। इसकी पत्तियों से हरी खाद बनायी जाती है तथा पोंगेमिया तेल चमड़ा परिशोधन एवं साबुन बनाने के काम आता है।

बायो–डीजल प्राप्त करने के लिए यूं तो जैट्रोफा तथा पोंगेमिया दोनों के ही बीज उपयुक्त हैं तथापि पोंगेमिया की तुलना में जैट्रोफा खेती को प्रमुखता दी जा रही है क्योंकि पोंगेमिया का पेड़ बड़ा होता है और अधिक स्थान घेरता है इसमें फलियां आना 7 से 8 वर्ष के बाद प्रारम्भ होती है। जहां तक जैट्रोफा की खेती का प्रश्न है, तो इसके लिए पर्याप्त आकार में ऐसी भूमि उपलब्ध है जिसपर खेती नहीं की जाती। ऐसी परती भूमि का जैट्रोफा खेती के अन्तर्गत लाकर कृषकों को अतिरिक्त आय के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं।

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययन से जैट्रोफा खेती की सम्भाव्यता एवं आर्थिक व्यवहार्यता निम्नलिखित प्रकार है:

सिंचित खेती के अन्तर्गत जैट्रोफा की पैदावार : 3 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर

- 3 मीट्रिक टन जैट्रोफा बीजों से प्राप्त हो सकने वाला : 1 मीट्रिक टन (तेल) 2 मीट्रिक टन (खली)
- वर्तमान में देश में डीजल की औसत वार्षिक खपत : 40 मिलियन टन
- डीजल की खपत के समतुल्य जैट्रोफा तेल प्राप्त करने के लिए जैट्रोफा खेती हेतु भूमि की आवश्यकता : 40 मिलियन हेक्टेयर
- यदि डीजल में 20 प्रतिशत जैट्रोफा तेल मिलाया जाए तो जैट्रोफा तेल की आवश्यकता : 8 मिलियन टन
- 8 मिलियन टन जैट्रोफा तेल (बायो डीजल) प्राप्त करने के लिए वांछित क्षेत्रफल : 9 मिलियन हेक्टेयर या 80000 वर्ग कि.मी.
- भारत मे परती भूमि : 6 लाख वर्ग कि. मी.
- जैट्रोफा खेती की लिए उपयुक्त एवं उपलब्ध क्षेत्रफल : 17.4 मिलियन हेक्टेयर

विशेषज्ञों का मानना है कि लगातार बढ़ते आयात बिल एवं तदनुसार घरेलू बाजार में पेट्रोलियम उत्पादों की बढ़ती कीमतों की समस्या का समाधान काफी बड़ी सीमा तक बायो–डीजल के उत्पादन को बढ़ाकर किया जा सकता है।

भातर में 60 मिलियन हेक्टेयर अधिक परती भूमि है जिसमें से 17.4 मिलियन हेक्टेयर आसानी के साथ जैट्रोफा खेती हेतु प्रयुक्त की जा सकती है एक मोटे अनुमान के अनुसार इससे प्रतिवर्ष 17–20 मिलियन टन बायो–डीजल प्राप्त हो सकता है जो डीजल की औसत वार्षिक खपत (40 मिलियन टन) को एक सीमा तक पूरा करने में सहायक होगा।

जैव–ईंधन विकास कार्यक्रम के लक्ष्य – पारंपरिक ईंधन के विकल्प के तौर पर जैव–ईंधन, विशेष रूप से बायो–डीजल एवं बायो–पेट्रोल के उत्पादन को बढ़ाने के लक्ष्य निम्नलिखित हैं:

- स्वच्छ ईंधन के प्रयोग द्वारा पर्यावरणीय क्षति को रोकना
- आयातित एवं सीमित जीवाश्म ईंधन की आपूर्ति को घरेलू स्तर पर उपलब्ध एवं विदोहन करने लायक ऊर्जा के पुनः प्रयोग योग्य स्रोतों से प्रतिस्थापित करना
- परती, विशेष रूप से अर्द्ध–शुष्क भूमि को जैव–ईंधन उत्पादन के अन्तर्गत लाकर ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को आय का अतिरिक्त साधन उपलब्ध कराना
- घरेलू स्तर पर स्वच्छ ईंधन की आपूर्ति को बढ़ाकर देश के बढ़ते व्यापार घाटे को कम करना
- विश्व के कतिपय तेल–उत्पादक एवं तेल–निर्यातक देशों में अस्थिरता के वातावरण एवं बढ़ती आतंकवादी गतिविधियों से उपजी तेल आपूर्ति की अनिश्चितता के विरुद्ध घरेलू बायो–ईंधन के रूप में सुरक्षा कवच तैयार करना

भारत में जैव–ईंधन विकास हेतु प्रयास – भारतीय अर्थव्यवस्था मूल रूप से कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था है। यहां दो–तिहाई से अधिक जनसंख्या अभी भी खेती पर निर्भर है। प्राकृतिक तौर पर भारत में वनस्पतियों की ऐसी अनेक प्रजातियां पायी जाती हैं जिनके बीजों से तेल निकालकर

उसका प्रयोग ईंधन के रूप में सीधे तौर पर तथा पारम्परिक ईंधन–पेट्रोल एवं डीजल के साथ मिलाकर किया जा सकता है। मोटे तौर पर इसके तीन लाभ होंगे। प्रथम तेल आयात के बढ़ते बिल के दबाब को कम किया जा सकेगा, द्वितीय कृषकों की आय को सकारात्मक तौर पर बढ़ाया जा सकेगा, तृतीय पेट्रोलियम उत्पादों की बढ़ती कीमतों को नियन्त्रित करके उत्पादन की ईंधन संबंधी लागतों को कम किया जा सकेगा।

इन्हीं समस्त तथ्यों को ध्यान मे रखकर विगत कुछ वर्षों से एथनॉल को पेट्रोल के साथ मिलाकर बेचने की योजना पर कार्य प्रारम्भ किया गया। नीतिकारों ने सैद्धान्तिक रूप से यह स्वीकार कर लिया कि जैव–ईंधन का उत्पादन एवं उपभोग आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य है तथा देश में इसकी विशाल संभाव्यता भी मौजूद है। इसी के तहत चीनी मिलों के साथ एथेनॉल के उत्पादन हेतु करार किए गए किंतु निम्नलिखित कारणों से इसे व्यावसायिक स्वरूप प्रदान नहीं किया जा सका:

- गन्ना पेराई करने वालों (चीनी मिलों तथा गन्ना क्रेशर इकाइयाँ), पेट्रोलियम कंपनियों पेट्रोल पंपों तथा उपभोक्ताओं के बीच सहयोग की कमी
- जैव–ईंधन (पेट्रोल के साथ एथनॉल मिलाने) की तकनीकी व्यवहार्यता स्थापित हो जाने के बावजूद उपभोक्ताओं द्वारा इसे स्वीकार कर लेने के प्रति आश्वस्त न होना
- सब्सिडी से जुड़े प्रश्नों – मात्रा, लाभार्थी तथा सापेक्षिक भाग – का समाधान न खोजा जाना
- विभिन्न राज्यों में शीरे एवं एथेनॉल पर बिक्री करों की दरों में अंतर
- प्रतिकूल मानसून के चलते देश के दो बड़े गन्ना उत्पादक राज्यों – उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में गन्ना उत्पादन काफी गिर जाना।

इन समस्त कारणों से एथेनॉल को पेट्रोल के साथ मिलाकर बेचने के कार्यक्रम को अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है। यह और बात है कि भारी मुनाफा कमाने के उद्देश्य से अधिकांश पेट्रोल पंपों पर पेट्रोल में साल्वेन्ट की बड़े पैमाने पर मिलावट की जा रही है। इसी प्रकार डीजल में मिट्टी के तेल की मिलावट की जाती है। समाज के कमजोर वर्गों को लागत से नीचे मूल्य पर आपूर्ति किया जाने वाला मिट्टी का तेल, चोर बाजार से डीजल में मिलाकर बेचा जाता है। इन समस्त समस्याओं का समाधान बायो–डीजल के उत्पादन को बढ़ाकर किया जा सकता है।

बायो–डीजल के उत्पादन में भारत की सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र दोनों की ही इकाईयाँ रुचि ले रही हैं। इसका विवरण निम्नलिखित प्रकार है :–

जट्रोफा फार्मिंग में कार्पोरेट सेक्टर

- डी 1 मोहन बायो ऑयल्स लि. : यू.के. की कंपनी डी–1 ऑयल्स एवं चेन्नै स्थित भारतीय कंपनी मोहन ब्रेवरीज के बीच संयुक्त उपक्रम द्वारा 80 करोड़ रुपये की लागत वाली परियोजना के तहत 24000 टन जट्रोफा बीजों की पेराई करके 8 टन तेल निकाला जाएगा। इतनी अधिक मात्रा में बीज प्राप्त करने के लिए तमिलनाडु में 40000 हेक्टेयर, आंध्र प्रदेश में 20000 हेक्टेयर, छत्तीसगढ़ में 50000 हेक्टेयर भू–भाग पर जट्रोफा की खेती की जाएगी। बाद में राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक में इस खेती का विस्तार किया जाएगा।
- रिलायन्स लाइफ साइन्स : 50 एकड़ क्षेत्रफल में पायलट परियोजना समालकोट फार्म्स, काकीनादा प्रगति पर है जिसमें रिलायन्स के कृष्णा–गोदावरी बेसिन गैस फील्ड के निकट हाईब्रिड जट्रोफा पौधे फूल दे रहे हैं। रिलायन्स लाइफ साइन्स बड़े पैमाने पर महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश एवं राजस्थान में संविदा खेती के रूप में जट्रोफा फार्मिंग को अपनाएंगे। इससे जो तेल निकलेगा उसे रिलायन्स इण्डस्ट्रीस की जामनगर रिफाइनरी से प्राप्त डीजल में मिलाया जाएगा। रिलायन्स लाइफ साइन्स कृषकों को उच्च विनियोग–उच्च प्रतिफल मॉडल के तहत फर्टीनेशन–ड्रिप सिंचाई के द्वारा फर्टिलाइजेशन अधिक पैदावार वाले माड्यूल को अपनाने के लिए प्रेरित कर रहा है।
- टीम सस्टेन : कोच्चि स्थित कंपनी संयुक्त राज्य अमरीकी कंपनी बायो–डीजल इंडस्ट्रीज के साथ मिलकर 30000 लीटर प्रतिदिन बायो–डीजल उत्पादन क्षमता का प्लांट स्थापित करने की योजना पर कार्य कर रही है।
- नेचुरल बायो एनर्जी लि. : आस्ट्रीयाई कंपनी एनर्जिया जी एम बी एच के साथ एक संयुक्त उपक्रम द्वारा आंध्र प्रदेश में काकीनाडा के निकट एक जट्रोफा फार्म तथा बायो–डीजल प्लांट स्थापित किया जा रहा है।
- डेमलर क्रिसलर इंडिया लि. : विश्व की प्रसिद्ध कार – मर्सिडीज – बनाने वाली कंपनी की भारतीय इकाई सेन्ट्रल साल्ट एंड मैरीन कैमीकल्स रिसर्च इंस्टीट्यूट एवं होहेनहीम विश्वविद्यालय संयुक्त रूप से गुजरात में 30 एकड़ फार्म एवं उड़ीसा में 20 एकड़ फार्म पर जट्रोफा की खेती कर रहे हैं। इसमें सी एम एम सी आर आई फार्मिंग तकनीक मुहैया करा रहा है जबकि डेमलर क्रिसलर प्रसंस्करण प्लांट स्थापित कर रही है। इस परियोजना के तहत मर्सिडीज कार की सफलता पूर्व 1920 कि.मी. बायो–डीजल्स से चलाया जा चुका है।
- भारतीय रेल : भारतीय अपनी रेलवे लाइन के किनारे खाली पड़ी 90000 हेक्टेयर भूमि जट्रोफा की खेती के लिए पट्टे पर देगा। इससे रेलवे की अपनी आवश्यकता का 50 प्रतिशत ईंधन बायो–डीजल के रूप में प्राप्त हो सकेगा।
- बन्नारी अभ्यान सुगर्स : कोयम्बटूर स्थित यह कंपनी जट्रोफा खेती को अपनाने की योजना बना रही है।
- अहिंसा : एक गैर–सरकारी संगठन जट्रोफा खेती की योजना पर कार्य कर रहा है।
- इमामी समूह : जट्रोफा खेती में स्वयं को विविधीकृत कर रही है।
- **इंडियन ऑयल कार्पोरेशन;** • इफको; • तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम; • सदर्न ऑन लाइन बायोटेक्नोलोजीज़ लि. हैदराबाद

बायो–ईंधन के उत्पादन एवं उपभोग को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार लागत का 30 प्रतिशत (रु. 6000 प्रति हेक्टेयर) सब्सिडी के रूप में छूट प्रदान कर रही है। इस क्षेत्र में निवेश करने वाली इकाईयों को प्रत्यक्ष करों एवं परोक्ष करों में रियायत देने की भी नीति अपनायी गयी है।

अभी हाल ही में भारत सरकार ने जट्रोफा, पैंगोमिया एवं इसी प्रकार के अन्य पादपों, जिनसे बायो–डीजल बनाया जा सकता है, की खेती, तेल उत्पादन एवं उसके परिशोधन, कीमत नीति तथा डीजल के साथ उसके मिश्रण से संबंधित मुद्दों पर सुझाव देने के लिए केन्द्रीय पेट्रोलियम सचिव एस.सी. त्रिपाठी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की है। पंचायती राज सचिव बी.एस. लाली, योजना आयोग के परामर्शदाता आर मंडल एवं राष्ट्रीय वेजीटेबल तेल विकास बोर्ड, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास निगम के प्रतिनिधियों को इस समिति में सदस्य बनाया गया है।

बायो–डीजल कीमत नीति – भारत सरकार ने हाल ही में बायो–डीजल कीमत नीति घोषित की है। इस नीति के प्रमुख तथ्य निम्नलिखित प्रकार हैं:

- जट्रोफा तथा पैंगोमिया के बीजों से निकाले गए संपूर्ण (बायो–डीजल) तेल को सार्वजनिक क्षेत्र की तेल बेचने वाली कंपनियां खरीदेगी।
- डीजल के साथ इसे मिलाकर 25 रुपये प्रति लीटर की कीमत पर बिक्री की जाएगी।
- जट्रोफा के बीजों की कीमत पांच रुपये प्रति किलोग्राम तथा इससे निकाले गए बायो–डीजल की कीमत 18–20 रुपये प्रति किलोग्राम होगी।
- प्रारंभ में डीजल में 5 प्रतिशत बायो–डीजल मिलाकर बाजार में बेचा जाएगा। इसका अनुपात धीरे–धीरे बढ़ाकर विभिन्न चरणों में सन् 2020 तक 20 प्रतिशत तक कर दिया जाएगा।
- गैर–खाद्य तिलहनों से बायो–डीजल विनिर्माण की संपूर्ण प्रक्रिया कृषि क्षेत्रक के अंतर्गत है।
- गैर–खाद्य तेलों से निकाले गए बायो–डीजल के उत्पादन एवं वितरण पर सभी प्रकार के करों में 10 वर्ष की छूट।
- कृषकों के संगठनों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत स्वयं सहायता समूहों सहित गैर–सरकारी संगठनों को सक्रिय रूप से गैर–खाद्य तिलहनों के उत्पादन से जोड़ना।

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि बायो–डीजल तथा बायो–पेट्रोल के उत्पादन एवं उपयोग को बढ़ाकर भारत को ऊर्जा संकट से बचाने के लिए कवच के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके लिए एक बहुआयामी नीति बनाए जाने की आवश्यकता है जो जट्रोफा–पोंगेमिया–गन्ना उत्पादकों, वेजीटेबल तेल/एथनॉल बनाने वाली कंपनियों के निवेशकों, पेट्रोलियम कंपनियों तथा पेट्रोल पंपों के स्वामियों तथा पेट्रोल–डीजल के उपभोक्ताओं के हितों की रखा कर सके। केंद्र सरकार को जैव–ईंधन की परियोजनाओं पर सब्सिडी तथा संविदा खेती परिचालन जैसे मुद्दों पर क्रान्तिकारी निर्णय लेने होंगे, वहीं राज्य सरकारों को इसके उत्पादकों एवं प्रसंस्करण करने वाली इकाईयों को हर संभव सहायता देनी होगी।

(लेखक द्वय क्रमशः राजकीय कालेज, अलीगढ़ तथा आगरा कालेज, आगरा में अर्थशास्त्र विभाग में रीडर हैं)

झाबुआ जिले के आर्थिक विकास में वाटरशेड मिशन का योगदान

मध्य प्रदेश की दक्षिण पश्चिम सीमा पर स्थित झाबुआ एक प्रमुख आदिवासी बहुत आबादी वाला जिला है। क्योंकि यहां की आबादी का लगभग 85.66 प्रतिशत भाग अनुसूचित जनजाति के लोगों का है। जिले की 85 प्रतिशत आबादी कृषि एवं उससे संबद्ध कार्यों में संलग्न है किंतु दुर्भाग्य से कृषि उन्नत न होकर पिछड़ी अवस्था में है। फलस्वरूप यहां की बहुसंख्य आबादी को रोजगार की तलाश में कोटा, मथुरा, बड़ोदरा, भोपाल, इन्दौर आदि बड़े नगरों को जाना पड़ता है। किन्तु 1 अक्तूबर 1994 को जिले में राजीव गांधी जलग्रहण मिशन की स्थापना के बाद से जिले की तस्वीर बदल रही है। जलग्रहण क्षेत्र मिशन के फलस्वरूप न केवल रोजगार के अवसर बढ़े हैं, वरन कृषि एवं इससे संबद्ध कार्यों का तेजी से विकास हुआ है।

मिशन के तहत मृदा एवं जल संरक्षण, जल संवर्द्धन पौधा रोपण एवं चरागाह विकास, हरियाली, परियोजना, पड़त भूमि विकास कार्यक्रम मुख्यतः सम्मिलित किये गये हैं।

253 चयनित माइक्रो वाटरशेडों के माध्यम से 359 गांवों को लाभान्वित किया जा रहा है। इस योजना के तहत विगत 10 वर्षों में 6742.57 लाख रुपये व्यय किये गये हैं, जिसके लिए 12765.70 लाख हेक्टेयर भूमि का चयन किया गया है। ग्रामीण समुदाय द्वारा 50 प्रतिशत श्रमदान कर जनसहभागिता से 565 जल संवर्द्धन संरचनाएं निर्मित की गईं हैं। सामाजिक सुरक्षा से वन एवं राजस्व, भूमि पर चराई बंदी तथा कुल्हाड़ी बंदी से लाखों सागोन एवं अन्य प्रजातियों के 47.36 लाख पौधों का पुनर्अकुंरण संभव हुआ है। चारागाह विकास से विपुल धारा का उत्पादन हुआ है। जिससे ग्रामीणों द्वारा पशुधन से अच्छी नस्ल के पशुओं की वृद्धि कर डेयरी विकास को मूर्तरूप दिया जा रहा है। जलग्रहण क्षेत्रों में 1538 स्वयं सहायता समूह एवं 2006 उपभोक्ता समूह गठित किये गये हैं। जलग्रहण क्षेत्रों में समूह तथा बचत भावना एवं छोटी–मोटी जरूरतों की पूर्ति हेतु 186 महिला बचत समूह बयरा नी कुलड़ी का गठन किया गया है। गठित समूहों में से 83 समूह नाबार्ड से लिंक किये गये हैं। वहीं 834 समूह आयवर्द्धक गतिविधियों में संलग्न होकरअतिरिक्त आय प्राप्त कर रहे हैं। अन्य गतिविधियों में 182 अनाज बैंक, 2519 शुष्क शौचालय, 6409 धुंआ रहित चूल्हों का प्रदाय, 251 बायोगैस की स्थापना की गई है। जलग्रहण क्षेत्रों से चयनित स्वयं सेवकां को बैर बडिंग हेतु प्रशिक्षित कर 1.76 लाख पौधों की बडिंग की गई है। उद्यानिकी एवं कल्पतरू के अन्तर्गत 1285.00 हैक्टेयर में व्यवसायिक फलोद्यान किया गया है। मिशन के कार्यों की सफलता को दृष्टिगत रखते हुए ही म.प्र. के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंह ने झाबुआ को वाटरशेड का हेडमास्टर कहा था।

वाटरशेड मिशन के कार्यों के सतत मूल्यांकन की आवश्यकता है, साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि 10 अशासकीय संस्थाओं तथा 23 शासकीय एजेन्सियों द्वारा आवंटित राशि निश्चित उद्देश्यों के लिये ही व्यय की जा रही अथवा नहीं। मिशन की सफलता को देखते हुए इसका विस्तान जिले के संपूर्ण 1326 गांवों तक विस्तारित किया जाना चाहिए, जिससे संपूर्ण जिले के निवासी आर्थिक रूप सुदृढ़ हो सके।

भारत में सौर ऊर्जा

मधुज्योत्सना एवं जगनारायण

कुदरत हमारे मुल्क पर हमेशा से ही मेहरबान रही है। उसने हमें ढेरों नियामतें दी हैं। दुनिया के तमाम विकसित मुल्कों की तुलना में हमारे देश के कई हिस्सों को सूरज की कई गुना ज्यादा रोशनी मिलती है। यहां पूरे साल में कुल 5 लाख करोड़ किलोवाट घंटे सौर ऊर्जा की बरसात होती है, जो हमारे आज की कुल सालाना ऊर्जा की खपत और जरूरत दोनों से ही सैकड़ों गुना ज्यादा है। आकड़ों से पता चलता है कि हमारे मुल्क की जमीन पर सूरज से निकल कर बरसने वाली पूरी रोशनी को यदि इकट्ठा कर बिजली में बदल दिया जाये तो हमारा देश बिजली के मामले में न केवल अपनी सारी जरूरतें पूरी कर लेगा बल्कि दुनिया के कई और देशों को भी बिजली देने की हालत में पहुंच जायेगा। भारत को मिलने वाली कुदरती सौर ऊर्जा के विषय में वाशिंगटन की 'वर्ल्ड वाच संस्था' की रपट के मुताबिक भारत थार के रेगिस्तान से भारी सौर ऊर्जा ले सकता है और इस ऊर्जा संसाधन को दूसरे हिस्से में पहुंचाकर अपनी बिजली की समस्या को हल कर सकता है।

लगभग 120 करोड़ आबादी वाले हमारे देश में विकासशील देशों की 20 प्रतिशत ऊर्जा की खपत हो जाती है, परन्तु ऊर्जा के लिए महंगे आयातित तेल पर निर्भरता और उसकी निरन्तर बढ़ती मांग तथा स्थिर देशी उत्पादन के चलते बिजली के उत्पादन और मांग के बीच लगातार भारी खींचतान मची हुई है। इसके साथ ही परम्परागत जीवाश्मीय ऊर्जा स्रोतों की लगातार घटती मात्रा और उनसे बनने वाली बिजली से प्रदूषण की बढ़ोत्तरी से जो हालात बनती है उसमें हमें अपनी बिजली की जरूरत के लिए जीवाश्मीय ऊर्जा साधनों को छोड़कर ऊर्जा संबंधी सभी कामों के लिए हानिरहित नये साधनों को जल्द से जल्द अपनाना होगा। इस दिशा में हमें सौर ऊर्जा ही सबसे अधिक मुफीद दिखलाई पड़ती है। इसके विषय में दुनिया के शीर्ष वैज्ञानिकों का कहना है कि आने वाले पचास वर्षों में दुनिया की 80 प्रतिशत ऊर्जा का स्रोत सूरज की रोशनी ही होगी। बदलते वैश्विक परिवेश में देश में बिजली की दिन ब दिन बढ़ती मांग और उसके घटते जीवाश्मीय स्रोतों के मद्देनजर भविष्य में हमारे लिए भी सूरज की रोशनी ही बिजली प्राप्ति की सबसे आसान साधन होगी।

सौर ऊर्जा की आवश्यकता – भारत गांवों का देश है गांवों के विकास के बिना यहां विकास की कल्पना बेमानी है। बिजली इसका मुख्य आधार है। विशाल भारत की जटिल भौगोलिक परिस्थितियों वाले सुदूरवर्ती गांवों में परम्परागत साधनों से उत्पादित ग्रिड वाली बिजली को पहुंचाना एक दुरुह कार्य है। आज भी हमारे देश में लगभग 18,000 गांव ऐसे हैं जहां परम्परागत ग्रिड की बिजली पहुंचाया जाना किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। स्थिति का आकलन कर अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों के माध्यम से सन् 2012 तक ऐसे गांवों में बिजली पहुंचाने की योजना बनाई है। इस प्रकार बिजली की सुविधा से वंचित सर्वाधिक गांवों में लगभग 3000 की संख्या बंगाल में है, इसके अलावा 36 असम प्रांत के कछार जिले में, 8 कश्मीर के कारगिल में और 27 छोटे गांव शामिल हैं।

देश में समवेत विकास के लिए इन गांवों में बिजली का पहुंचाया जाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। सुदूरवर्ती आवागमन साधनों से रहित इन गांवों में खेतों की सिंचाई तथा घरों में प्रकाश के लिए डीजल सेटों के लिए डीजल की आपूर्ति तथा डीजल पर आधारित जनरेटरों और पम्पों का रखरखाव भी खर्चीला पड़ता है। इस प्रकार के साधन रहित भारतीय गांवों में रोशनी और सिंचाई तथा अन्य जरूरी कामों के लिए बिजली पहुंचाने में प्रकाश वोल्टीय विद्युत प्रणाली विशेष लाभकारी है।

भारत में सौर ऊर्जा की ग्रामीण उपयोगिता – ग्रामीण विकास के लिए ऊर्जा का विशेष महत्व है। जिसकी प्राप्ति के लिए परम्परागत साधनों में लगातार आती कमी और बढ़ती मांग के मद्देनजर आज ग्रामीण विकास के लिए सौर ऊर्जा का महत्व बहुत बढ़ गया है। ग्रामीण घरों को रोशन करने से लेकर खाना बनाना, गलियों एवं सार्वजनिक स्थलों की रोशनी, ग्रामीण दवाखानों में जीवन रक्षक दवाओं को नियंत्रित ताप में संरक्षण, आधुनिक संचार माध्यमों यथा– टेलीफोन, टीवी, तार, ईमेल, फैक्स तथा साइबर गृहों के संचालन तथा छात्रों की पढ़ाई, प्रौढ़ शिक्षण और अनौपचारिक शिक्षा के साथ ही सिंचाई एवं पेयजल की आपूर्ति आदि ग्रामीण आवश्यकताओं के लिए आज सौर ऊर्जा की विशेष उपयोगिता है।

आज सौर ऊर्जा के द्वारा मध्य प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक के ग्रामीण स्टेशनों को रोशन करने के साथ ही गुजरात की डेयरियों के लिए गर्म पानी की भी आपूर्ति हो रही है। वैज्ञानिकों ने गेहूं, धान, मक्का, अदरक, काली मिर्च, आदि फसलों को सुखाने के लिए उपयुक्त शुष्कन प्रणाली का विकास किया है। इसके अलावा चाय, तम्बाकू, दालों, मसालों के साथ ही दूध, लकड़ी और फलों के सुखाने की औद्योगिक शुष्कन प्रणाली का भी विकास हो चुका है। ठण्डे प्रदेशों में सौर वायु तापकों का प्रयोग घरों को गर्म रखने के लिए भी किया जा रहा है।

कुल मिलाकर ग्रामीण जनजीवन के कृषि जनजीवन के कृषि और गैर–कृषि दोनो क्षेत्रों में सौर ऊर्जा की उपयोगिता स्वतः प्रमाणित है। आज गांवों में सौर ऊर्जा की धीमी लेकिन लगातार बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए यह स्पष्ट लगने लगा है कि आने वाले दिनों में भारतीय गांवों में ऊर्जा की आपूर्ति सूरज की धूप से ही होगी। सूरज से मिलने वाली धूप से जिन दो विधियों द्वारा देश में ऊर्जा की आपूर्ति हो रही है उनमें एक है और सौर ऊष्मकों द्वारा ऊर्जा का उपयोग। दूसरा है सौर फोटो वोल्टिक प्रणाली से उत्पादित बिजली का उपयोग। इनके विस्तृत विवरण इस प्रकार हैं :–

सौर तापीय ऊर्जा का ग्रामीण उपयोग – सूरज की रोशनी से मिलने वाली ऊर्जा को विशेष रूप से बने उपकरणों से तापीय ऊर्जा में बदलकर उसका इस्तेमाल दैनिक जीवन एवं ग्रामीण उद्योगों तथा कृषि में किया जाता है। सौर उष्मा से चलने वाली प्रणालियों के रूप में सौर कुकर, सौर तालाब, सौर जल तापक, सौर फसल शुष्कक, सौर तापीय पम्प, सौर भवन उष्मक आदि कार्यों में होता है। जिनमें से कुछ के विवरण निम्नवत हैं :–

सौर जल उष्मक का प्रयोग – सौर ऊर्जा के द्वारा पानी गरम करने का काम देश के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहा है। जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, असम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, गुजरात आदि क्षेत्रों में यह प्रणाली विशेष रूप से लोकप्रिय हुई है। सौर जल तापकों का प्रयोग नहाने, कपड़ा धाने, बर्तन साफ करने के दैनिक क्रियाकलापों के अलावा ग्रामीण उद्योगों में भी हो रहा है। इजराइल में विकसित पानी गर्म करने के सौर तालाब प्रणाली का उपयोग करते हुए बना दुनिया का सबसे बड़ा सौर तालाब गुजरात प्रान्त के कच्छ के निकट स्थापित है। इस तालाब का क्षेत्रफल 60,000 वर्ग मीटर है, जिसकी गहराई दो मीटर के करीब है। यह तालाब 70 डिग्री सेल्सियस गर्म पानी की आपूर्ति करता है। इस गर्म जल का उपयोग कच्छ की डेयरियां दूध की बाल्टियों को कीट मुक्त करने के लिए करतीं हैं। इस क्षेत्र में इसी प्रकार एक अन्य सौर तालाब निर्माण की प्रक्रिया में है। सौर जल तापकों के प्रयोग से जहां जलावनी लकड़ी के रूप में ईंधन की बचत होती है वहीं वृक्षों का संरक्षण तथा आग जलाने से वायुमंडल में होने वाली पर्यावरणीय क्षति में भी गिरावट आती है। इसके साथ ही जिन गांवों में बिजली है वहां भी सौर तालाबों और जल तापकों से बिजली की बचत होती है। बचने वाली इस बिजली का प्रयोग कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों में किया जा सकता है। देश में सौर जल तापकों की तकनीकी सम्भावनाओं को 14 करोड़ वर्ग मीटर संग्राहक क्षेत्र के बराबर आंका गया है। वर्तमान समय में केवल 6 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को ही जल तापन के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है। यह आंकड़ा इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि देश में जल तापन तकनीक से सौर ऊर्जा के प्रयोग की व्यापक सम्भावना है, जो ग्रामीण विकास प्रक्रिया के लिए शुभ संकेत है।

सौर कुकर – खाना पकाने के काम में ग्रामीण क्षेत्रों में सौर कुकरों के प्रति ग्रामीणों की रुचि बढ़ रही है। इस कार्य के लिए तकनीशियनों ने कई तरह के सोलर कुकरों का निर्माण किया है जो बाजार में आसानी से मिल जाते हैं, जिनके विवरण निम्नवत् हैं :–

बाक्स सोलर कुकर – यह सौर कुकर भारत के शहरी और ग्रामीण दोनों अंचलों में समान रूप से लोकप्रिय हैं। इस समय देश में उपयोग हो रहे इस प्रकार के सोलर कुकरों की संख्या चार लाख से भी ऊपर जा चुकी है। इस सोलर कुकर में एक समय में एक साथ दो सब्जी, दाल, चावल अलग–अलग पकाकर खाया जा सकता है। इस सौर कुकर में खाना धीरे–धीरे पकता है। जिससे इस कुकर से बने भोजन में पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं। साथ में बाक्स सोलर कुकर में रखा खाना देर तक गर्म रहता है।

कार्ड बोर्ड सोलर कुकर – इस प्रकार का सोलर कुकर दो–तीन लोगों के भोजन बनाने के लिए सर्वथा उपयुक्त है। इसकी बनावट आसान और वजन हल्का होता है। यह नालीदार गत्ते का बना होता है तथा इसका बाहरी भाग लेमिनेटेड होता है जो इसे भीगने से बचाता है। इस सोलर कुकर में खाना बनाने के लिए काले रंग के अल्युमिनियम के बर्तन जो पालीथिन बैग से ढके होते हैं, प्रयोग में लाये जाते हैं।

डिश सोलर कुकर – उच्च परावर्तन वाली अल्युमिनियम की चादरों से बना तश्तरीनुमा गहरा और गोलाकार बना यह सौर कुकर लोहे के मजबूत स्टैण्ड में फिट होता है। इसे हमेशा सूर्य की किरणों की दिशा में रखा जाता है जिससे सूर्य की किरणें एक बिन्दु पर एकत्रित होती हैं, यही भोजन बनाने वाला बर्तन रखा जाता है। यह सौर कुकर ग्रामीण अंचलों के 10–15 लोगों के संयुक्त परिवारों के भोजन पकाने के लिए अत्यंत उपयोगी है।

सामुदायिक सौर कुकर – इस सौर कुकर के माध्यम से एक साथ 40–50 लोगों का खाना बनाया जा सकता है। यह बड़े संयुक्त परिवारों तथा छोटे संस्थानों के लिए उपयोगी है।

सौर वाष्प कुकिंग प्रणाली – हाल में आविष्कृत इस प्रणाली के सौर कुकर से हजारों लोगों का खाना इकट्ठा पकाया जा सकता है। इस प्रकार एक सौर कुकर सितम्बर 2001 में पांडिचेरी के वैज्ञानिक शोध केन्द्र ओरोविल में लगाया गया था जिसके ठीक ढंग से काम करने की सूचना है।

ग्राम्य उत्पाद : शुष्कन प्रविधि – कृषि उपजों (अनाजों) को सुखाकर नमी रहित करने के बाद ही बाजार में बेचा जाता है। कृषि उपजों को सुखाने की परम्परागत प्रक्रिया में समय अधिक लगता है और छीजन भी जाता है। आम शुष्कन प्रणाली में हवा, बारिश तथा पक्षी और कीटों से भी कृषि उत्पादों को क्षति पहुंचाई जाती है। सौर शुष्कन प्रणालियों द्वारा कृषि उत्पादों की अवांछित क्षति रोके जाने के अलावा ईंधन की भी बचत की जा सकती है। इस प्रविधि से गेहूं, धान, मक्का, अदरक, काली मिर्च के साथ ही चाय, तम्बाकू, दाल, मसालों, दूध और फल को सुखाने के लिए बड़ी औद्योगिक शुष्कन प्रणालियां भी विकसित की गई हैं। आज असम के चाय बागानों में चाय की पत्तियों को पैक करने के पूर्व सुखाने के लिए इसी प्रविधि का प्रयोग किया जा रहा है। इस प्रणाली के प्रयोग से 20 से 25 प्रतिशत परम्परागत ऊर्जा का बचाया जाना संभव हो सकता है।

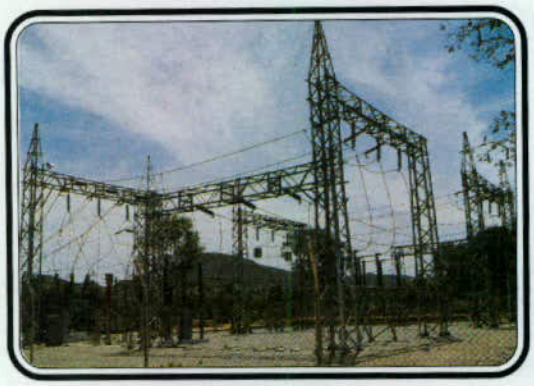

सौर ड्रायर – इस प्रणाली का प्रयोग ठंडे प्रदेशों में मकानों को गर्म रखने के लिए किया जाता है। यह ठंडे प्रदेशों के लिए सूरज की रोशनी से घरों को गर्म करने की उपयोगी और सस्ती प्रविधि है।

सोलर ग्रीन हाउस – ठंडे और ऊंचाई वाले स्थानों पर सोलर ग्रीन हाउसों के उपयोग से सब्जी, फल और फूलों की खेती को एक आवश्यक नियंत्रित स्थिति और तापक्रम प्रदान किया जाता है। जम्मू कश्मीर और लद्दाख जैसे ही अन्य क्षेत्रों के लिए यह प्रणाली अत्यंत उपयोगी है। इन क्षेत्रों में इस प्रणाली का प्रयोग पोल्ट्री फार्मों के लिए भी किया जा रहा है।

सौर तापीय जल पम्प – सौर तापीय ऊर्जा को यांत्रिक ऊर्जा में बदलकर पम्प चलाया जाता है। इस प्रविधि का प्रयोग खुले कुओं या बोर कुंओं से पानी निकालने के लिए भी किया जा सकता है। इस प्रणाली से 40–50 मीटर की गहराई से पानी निकालने के लिए 500 तथा 1000 वाट हाइड्रोलिक क्षमता के सौर पम्प का निर्माण किया जा चुका है। इन पंपों का प्रयोग खेती में सिंचाई के लिए किया जाता है।

ये कुछ उदाहरण हैं भारत में सौर तापीय ऊर्जा के प्रयोग के, इन प्रणालियों का और अधिक प्रचार–प्रसार और विकास कर हम भारतीय गांवों को सौर ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की दिशा में आगे बढ़ाकर गांवों को ऊर्जा सम्पन्न बना सकते हैं। इसी प्रकार सौर विद्युत प्रणाली के प्रयोग से ग्रामीण बिजली की समस्या का हल खोज गांवों को आधुनिक संचार साधनों से जोड़ते हुए वहां आधुनिक संसाधन उपलब्ध कराकर ग्रामीण विकास प्रक्रिया में तेजी ला सकते हैं।

भारत में सौर फोटोवोल्टिक बिजली का ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोग – फोटोवोल्टिक प्रणाली से पैदा होने वाली सौर बिजली जिन भारतीय गांवों में पहुंची है वहां का कायाकल्प हो गया है। हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़, महराष्ट्र और कर्नाटक प्रांतों के गांवों में इस प्रणाली से उत्पादित सौर बिजली से पम्प चलाकर जहां खेतों की सिंचाई हो रही है वही रात में घरों एवं गांव की गलियों में प्रकाश फैलाया जा रहा है। यह सौर फोटोवोल्टिक बिजली का ही कमाल है कि आज भारत के इन गांवों के लोग भले ही कच्चे मकानों और फूस की झोपड़ियों में रहते हों, लेकिन रात के अंधेरे में नहीं रहते। आज देश के दर्जनों गांवों में सौर ऊर्जा से ग्रिड बिजली जैसी बिजली प्राप्त की जा रही है। इनकी सकल उत्पादन क्षमता लगभग 850 किलोवाट के करीब है। इसके साथ ही लगभग इतने ही अन्य गांवों में परियोजनाएं संस्थापन के विभिन्न चरणों में हैं। जिनकी उत्पादन क्षमता 900 किलोवाट से अधिक है।

देश के ग्रामीण अंचलों में सौर ऊर्जा से उत्पन्न बिजली का उपयोग कृषि एवं कृषिउत्तर दोनों क्षेत्रों में हो रहा है। यद्यपि इसके प्रसार की गति बहुत तेज नहीं है फिर भी इसकी लोकप्रियता से स्पष्ट रूप से यह लगने लगा है कि वह दिन बहुत दूर नहीं जब देश के अधिकांश गांव फोटोवोल्टिक प्रणाली से पैदा होने वाली बिजली का उपयोग करने लगेंगे। आज गांव के जिन कार्यों में सौर बिजली का प्रमुख रूप से उपयोग हो रहा है वे हैं–पेयजल की प्राप्ति, लघुस्तर पर खेतों की सिंचाई। सौर विद्युत के क्षेत्र में नवीनतम विकास प्रक्रिया के क्रम में अब ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशीतन गृह चलाये जाने का भी मार्ग प्रशस्त हो गया है। सौर प्रशीतल गृहों में ग्रामीण कृषि उत्पादों को संग्रहित कर सकेंगे और समयानुसार उनके विक्रय से लाभ उठा सकेंगे।

सौर लालटेन – आज भारतीय ग्रामीणों को जिस सौर उपकरण ने सर्वाधिक प्रभावित किया है वह है सौर लालटेन। छोटे आकार वाला यह प्रकाशीय उपकरण गांवों में अत्यंत उपयोगी है। जटिलतम हिमालयी गांवों, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, त्रिपुरा, नागालैंड, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तरांचल, अंडमान निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप समूह एवं अन्य कई जटिलतम भौगोलिक क्षेत्रों के सुदूर ग्रामीण आबादी में ये सौर लालटेन काफी उपयोगी साबित हो रही हैं। आज इन क्षेत्रों में बच्चों की पढ़ाई–लिखाई से लेकर, खेतों, खलिहानों, चौपालों और गांव के बाजारों तथा रात के सिंचाई की देखभाल के लिए सौर बिजली उपयोग हो रही है। इन क्षेत्रों के कई लोगों ने तो अपने खेतों के मध्य रखवाली के लिए बनी झोपड़ियों में भी सौर लालटेनें लगाई हैं। आज भारतीय गांवों में चार लाख के आसपास सौर लालटेनें कार्यरत हैं।

छायारहित सूरज की रोशनी से सौर लालटेन के सौर पैनल लगभग 6 घंटे में चार्ज होकर तीन घंटे भरपूर प्रकाश देते हैं। इन सोलर लालटेनों के सौर पैनल के सेल 20 से 25 वर्षों तक लगातार काम करते हैं सौर लालटेनों में लेड एसिड बैटरी लगी होती है जिसे दो से तीन साल में बदल दिया जाता है।

फिक्सड् यूनिट्स – ग्रामीण घरों में बिजली के लिए जिस दूसरे सौर उपकरण की सबसे ज्यादा उपयोगिता है, वह है फिक्सड् यूनिट्स (एस.एच.एस.)। चालीस वाट की क्षमता वाले इस सौर विद्युत उपकरण से नौ वाट के दो सी.एफ.एल. (काम्पैक्ट फ्लोरोसेंट लाइट) जलाई जा सकती है। इसमें एक अतिरिक्त प्वाइंट भी उपलब्ध रहता है जिससे रेडियो, ट्रांजिस्टर या टेलीविजन चलाया जा सकता है। राजस्थान के सुदूर पश्चिम के सीमावर्ती बाड़मेर और कोटा के पास वाले वांरा जनपद के लगभग 20 गांवों में इस सोलर होम लाइट सिस्टम सुचारू रूप से चल रहा है। राजस्थान की सामाजिक संस्था सोशल वर्क रिसर्च सेन्टर (एस.डब्ल्यू.आर.सी.) ने अपने गैर सरकारी प्रयास के अंतर्गत राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, हिमाचल, उत्तरांचल, सिक्किम और जम्मू कश्मीर के सुदूर गांवों में 5000 से भी ज्यादा सोलर होम लाइटिंग सिस्टम स्थापित किया है और

उनके नियमित संचालन तथा रखरखाव और मरम्मत की उपयुक्त व्यवस्था स्थानीय ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण देकर किया है।

सौर पंप – इसी क्रम में खेतों की सिंचाई के लिए सौर विद्युत पंपों की भी अपनी विशेष उपयोगिता है जिससे ग्रामीण अंचलों में बिना ग्रिड की बिजली से चलने वाले सौर पंपों के माध्यम से छोटी और सीमान्त जोतों की सिंचाई आसानी से की जा सकती है। आज दुनिया के सर्वाधिक सौर विद्युत जल पंप भारत में ही काम कर रहे हैं जिनकी संख्या एक हजार से ऊपर जा चुकी है। आज हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के कई किसान खेतों की सिंचाई के लिए इस विधि का उपयोग करने लगे हैं। हालांकि अभी अधिकतर साधन–संपन्न किसानों ने ही इस पद्धति को अपनाया है लेकिन इसकी उपयोगिता अब मध्यम और सीमान्त कृषकों को भी आकर्षित करने लगी है।

कल्याणकारी प्रयास – इस दिशा में 1984 में स्थापित राजस्थान की समाजसेवी ग्रामीण संस्था के कार्यों की विश्व स्तर पर विशेष चर्चा है। जयपुर से लगभग सौ किलोमीटर दूर तिलोनियां गांवों में संचालित 'सोशल वर्क रिसर्च सेंटर' नामक संस्था ने सौर ऊर्जा के माध्यम से गांवों को रोशन करने के साथ ही उनके आधुनिक संचार साधनों से लैस करने का जो अभिनव प्रयास किया है उससे अभावग्रस्त क्षेत्रों में बिजली ही नहीं अशिक्षित और अल्पशिक्षित ग्रामीण महिलाओं, युवतियों और युवकों को उनके अपने ही क्षेत्र में रोजगार और सम्मान भी मिला है। आज इस संस्था ने अपने संस्थान में प्रशिक्षित अल्पशिक्षित ग्रामीण स्त्री–पुरुषों के द्वारा 100 पंखे, 500 ट्यूब, टेलीफोन एक्सचेंज, कंप्यूटर, दृश्य–श्रव्य इकाई, पानी गर्म करने की व्यवस्था, सोलर वर्कशाप तथा 0 किलोवाट का सौर संयंत्र चलाकर ग्रामीण विकास के लिए विश्वस्तरीय उदाहरण प्रस्तुत किया है।

संस्था से प्रशिक्षण प्राप्त ग्रामीण बेयरफुट इंजीनियरों ने राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, हिमाचल, उत्तरांचल, सिक्किम और जम्मू काश्मीर के सुदूर गांवों को 5000 से ज्यादा होम लाइटिंग सिस्टम, और 4000 और लालटेनों के माध्यम से प्रकाशित कर रखा है। इस संस्था ने इन जटिल और सुदूर ग्रामीण अंचलों में युवक और युवतियों को व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर इन सौर उपकरणों के संचालन और रखरखाव के लिए बेयरफुट इंजीनियर के रूप में तैयार किया। तकनीकी प्रशिक्षण के अलावा इन युवाओं को एक ऐसे सामाजिक संगठनात्मक क्रियाकलापों का भी प्रशिक्षण दिया गया है जिसके माध्यम से ये बेयरफुट इंजीनियर ग्रामीणों को सौर ऊर्जा के प्रति जागृत कर उनके बीच पर्यावरण ऊर्जा समितियों का गठन करते हैं। जिसके अंतर्गत प्रत्येक सदस्य परिवार प्रयोग किया जाने वाले उपकरणों के अनुसार प्रति लालटेन बीस रुपए तथा एस.एचएस. के लिए साठ रुपये का मासिक शुल्क देता है जो प्रति माह बैंक में जमा हो जाता है। इसी प्रकार से इकट्ठा राशि से क्षेत्र में कार्यरत बेयरफुट इंजीनियर का वेतन दिया जाता है तथा इसी जमा राशि से घरों में कार्यरत सौर ऊर्जा उपकरणों की मरम्मत और बैटरी के बदलने का खर्च भी निकलता है।

इस भारतीय जनसेवी संस्था ने जो कार्य किया है उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि चाहे उत्तरांचल का पिथौरागढ़ हो, मध्य प्रदेश का आदिवासी बहुल झाबुआ का इलाका या राजस्थान के बारा जिले में मनोनी जैसा पिछड़ा गांव, सभी जगह ग्रामीण महिलाओं ने ही आगे बढ़ कर सौर ऊर्जा की लौ को जलाने का काम किया है। सौर ऊर्जा की इस लौ ने जटिल हिमालय के लगभग 20,000 किलोमीटर क्षेत्र में फैले माइनस 50 डिग्री सेल्सियस की कठिन शीत वाले लद्दाख, सिक्किम, हिमाचल और उत्तरांचल के दुर्गम इलाकों के गांवों को भी रोशन करने का काम किया है। जिसका परिणाम यह है कि इस जटिल क्षेत्र में 110 बेयरफुट इंजीनियर अपनी निष्ठा से 3000 होम लाइटिंग सिस्टम और 1500 सौर लालटेनों से रोशनी बिखेर रहे हैं।

समीक्षा – आज भारत में सौर ऊर्जा के प्रयोग और विकास मे कई समस्याएं भी हैं जिनके कारण देश में सौर ऊर्जा के प्रचार–प्रसार और विकास में अपेक्षित प्रगति नहीं हो पा रही है। लोग इस प्रणाली को अपनाने में हिचकिचाते हैं जिसके कई कारण हैं, जिसके वितरण इस प्रकार हैं:–

- अधिक संस्थापन मूल्य :– यद्यपि फोटोवोल्टिक और विद्युत प्रणाली के रखरखाव में न्यूनतम व्यय आता है, लेकिन उसका संस्थापन मूल्य इतना अधिक है कि सामान्य ग्रामीण इसे लगाने का साहस नहीं जुटा पाता।
- प्रचार–प्रसार का अभाव :– सरकारी महकमा इसके प्रचार– प्रसार में अपेक्षित रुचि नहीं लेता। जिसके कारण तमाम लोग सौर ऊर्जा के विषय में जान ही नहीं पाते। भारत के अधिकांश लोग आज भी इसके विषय में जानते ही नहीं। यह विद्या केवल पत्र–पत्रिकाओं और रेडियो, दूरदर्शन तक ही सीमित होकर रह गई है।
- ग्रामीणों मे अरुचि :– सौर ऊर्जा एक गैर–परंपरागत ऊर्जा साधन है, लोग परंपरागत साधनों से हटने को आसानी से तैयार नहीं होते। जिसके कारण पारंपरिक ऊर्जा साधनों के स्थान पर सौर ऊर्जा के संस्थापन के लिए लोगों को तैयार करने में भारी कठिनाई होती है।
- मौसम का प्रभाव :– सौर ऊर्जा के लिए सूरज की रोशनी एक अनिवार्य तत्व है। बदली के मौसम में सूरज की रोशनी कम मिलने से इस प्रणाली का काम करना धीमा हो जाता है जिसके कारण इस पर आधारित बिजली प्राप्ति की मात्रा घट जाती है।
- सीमित उत्पादन :– इस प्रणाली से सामान्य मौसम तथा केवल दिन में ही कुछ घंटे ऊर्जा प्राप्त होती है और इस काम के लिए तेज और सीधी धूप की आवश्यकता होती है इसके अभाव में इस पर आधारित उपकरण काम नहीं कर पाते।

- सार्थक शोध का अभाव :– हमारे देश में प्रयुक्त हो रही सौर बैटरियां शुद्ध सिलिकान से बनती हैं जिसके कारण इनकी कीमत बहुत अधिक पड़ती है और आम भारतीय इसका व्यय सहन नहीं कर पाता। आज विश्वव्यापी पेटेन्ट प्रक्रिया के बावजूद दुनिया के तमाम विकसित और विकासशील देशों से आने वाली सूचनाओं से पता चलता है कि इन देशों में सौर सेल के लिए सस्ते पदार्थों की तलाश में बड़े जोर–शोर से खोज हो रही है।

हमारे देश में सौर ऊर्जा प्रणालियों के प्रयोग और विकास के विषय में चल रही मंद प्रगति अत्यंत चिंता का विषय है। इसे देखते हुए विभिन्न पक्षों पर विचार–विमर्श, अध्ययन–मनन तथा चिंतन के बाद के इसके विकास के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं–

- सौर ऊर्जा के प्रचार–प्रसार का जिम्मा गैर–सरकारी समाजसेवी संस्थाओं को दिया जाये।
- सरकारी और शैक्षणिक संस्थानों में इस प्रणाली पर होने वाले शोध कार्यों पर विशेष निगरानी रखी जाये।
- शोध कार्यों के लिए समाजसेवी संस्थाओं को लगाया जाये।
- शोध कार्यों की प्रगति की नियमित व्यापक समीक्षा हो और उसे सार्वजनिक किया जाये।
- शोध करने वालों को साधन उपलब्ध कराने के साथ ही समयबद्ध परिणाम के लिए जिम्मेदार बनाया जाये।
- शोध परियोजना में धन देने वाली संस्थाओं से नौकरशाहों और प्रशासनिक अधिकारियों को हटाकर इस कार्य के लिए वैज्ञानिकों को लगाया जाये।
- फर्जी प्रोग्रेस रिपोर्ट देने वालों के विरुद्ध दंडनीय कार्यवाही का प्रावधान हो।
- शोध करने वाली संस्थाओं को नियमित निरीक्षण हो।
- शोध कार्य के लिए धन लेकर उसका दुरुपयोग करने वालों के लिए कड़े दंडनीय प्रावधान हों।
- आने वाले शोध परिणामों को व्यावहारिक धरातल पर प्रयुक्त करके उसे जांचा जाये यदि परिणाम प्रोग्रेस रिपोर्ट और की गई घोषणा के अनुरूप न हो तो इस प्रकार के शोध करने वालों से पूरा पैसा वसूला जाये।
- भारतीय सौर ऊर्जा शोध कार्यों का विकसित देशों में हो रहे शोध कार्यों से नियमित तुलना की जाये। ⊛

(लेखक इस स्वतंत्र पत्रकार एवं लोकोत्थान समिति से सम्बद्ध है)

सौर ऊर्जा की लागत

केंद्रीय अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्री विलास मुत्तेमवार ने बताया कि सरकार से प्राप्त वित्तीय सहायता के साथ देश में कुल 32 ग्रिड–इंटरएक्टिव सौर प्रकाशवोल्टीय विद्युत संयंत्र संस्थापित किए गए हैं। 2.1 मे.वा. की समग्र क्षमता के साथ, इन संयंत्रों से एक वर्ष में लगभग 25.0 लाख यूनिट बिजली का उत्पादन होने का अनुमान है। इसके अतिरिक्त, देश में लगभग 86 मेगावाट की समग्र क्षमता की लगभग 13 लाख विकेन्द्रीकृत ऑफ–ग्रिड सौर प्रकाशवोल्टीय प्रणालियां संस्थापित की गई हैं।

सरकार ने सौर ऊर्जा प्रणालियों की लागत को कम करने के लिए अनेक उपाय किए हैं, जिनमें शामिल हैं – 1. उनके कार्य–निष्पादन में सुधान के लिए अनुसंधान एवं विकास तथा सामग्रियों की खपत कम करना, 2. चुनिंदा सौर ऊर्जा प्रणालियों पर सब्सिडी, 3. कुछ कच्ची सामग्रियों, संघटकों और उत्पादों पर रियायती आयात शुल्क, 4. उत्पाद शुल्क से छूट और 5. पहले वर्ष में 80 प्रतिशत त्वरित मूल्यह्रास आदि।

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। कुरुक्षेत्र में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, कुरुक्षेत्र कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

पेट्रोलियम ऊर्जा का विकल्प : बायो डीजल

वैभव पाण्डेय

आज बढ़ती मानव गतिविधियों व आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऊर्जा संसाधनों पर निर्भरता व इसके सीमित स्रोत का असर अन्तर्राष्ट्रीय खनिज तेल बाजार में अस्थिरता के माहौल में दिखाई देने लगा है। विश्व में एक ओर जहां तेल का उत्पादन घटा है, वहीं दूसरी ओर तेल की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और आने वाले समय में और तेजी आ सकती है। इसके अलावा इससे होने वाले गैसीय उत्सर्जन द्वारा वायु प्रदूषकों का वायुमंडल में सांद्रण निरन्तर बढ़ रहा है। उसी क्रम में पर्यावरणीय समस्याएं मुख्य रूप से त्वचा, श्वास व नेत्र संबंधी बीमारियां पैदा हो रही हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हमें ऊर्जा के नए वैकल्पिक स्रोतों की तरफ ध्यान देना ही होगा।

क्या है बायो डीजल – देश के विभिन्न भागों में बहुतायत से उगने वाले 'जैट्रोफा' नामक एक जंगली पौधे से तैयार किया जाने वाला ईंधन जिसे जैट्रोफा मिथाइल एस्टर (जे.एम.ई.) के अतिरिक्त बायो डीजल, बायो फ्यूल, जैव ईंधन, जैव डीजल जैसे कई नामों से पुकारा जाने लगा है। यह 21वीं शताब्दी की देश के वैज्ञानिकों की एक ऐसी खोज है जो हमारी खनिज तेल की बढ़ती जरूरत को पूरा करने और आत्म निर्भरता प्राप्त करने की दिशा में वरदान सिद्ध हो सकती है। 'जैट्रोफा करकास' जिसे देश भर में साधारणतया 'जैट्रोफा' नाम से तथा उत्तर भारत में अधिकांशतया इसे 'रतनजोत' के नाम से जाना जाता है। यह एक बहुवर्षीय पौधा है जिसके बीजों से डीजल बनाने के सफल प्रयोग किए गए हैं। इस तेल को परम्परागत डीजल जो वास्तव में जीवाश्म डीजल होता है, में मिलाकर बायो डीजल बनाया जाता है। उल्लेखनीय है परम्परागत डीजल पृथ्वी के अन्दर विभिन्न जीवधारियों के अनेक वर्षों तक दबे रहने और फिर वहां घटने वाली विभिन्न घटनाओं और रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप वहां निर्मित हुआ है। विभिन्न जीवधारियों से निर्मित होने के कारण ही इसे 'जीवाश्म डीजल' कहा जाता है।

इस जीवाश्म डीजल में एक निश्चित मात्रा में जैट्रोफा के बीजों से प्राप्त तेल को मिलाकर बने हुए मिश्रण को बायो डीजल कहा जाता है। इस 'बायो डीजल' को डीजल चालित किसी भी इंजन यानि कि बस, ट्रक, ट्रैक्टर, डीजल पम्पसेट, जेनरेटर आदि में जीवाश्म डीजल के स्थान पर सुगमतापूर्वक इस्तेमाल में लाया जा सकता है। इसको प्रयोग में लाने हेतु मशीन के इंजन में किसी भी प्रकार के बदलाव की आवश्यकता नहीं रहती है जो इसका एक और विशेष पहलू है। इस पौधे की एक और विशेषता है कि यह रेगिस्तान से लेकर हिमालय क्षेत्रों तक में समान रूप से पैदा होता है। इसके अतिरिक्त विदेशी अरंड, नीम, करंजी, सूर्यमुखी, नागपंचा, सोयाबीन आदि के शुष्क बीजों द्वारा 30–35 प्रतिशत डीजल के समान संरचना जैसा तेल प्राप्त किया जा सकता है। जानवरों की चर्बी से भी बायो डीजल का उत्पादन संभव है।

बायो डीजल उत्पादन का औचित्य – देश में बढ़ती जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने और औद्योगिक विकास को गति प्रदान होने के फलस्वरूप देश में खनिज तेल की मांग निरन्तर तेजी से बढ़ रही है। आज हम खनिज तेल की अपनी आवश्यकता का केवल 30 प्रतिशत भाग ही घरेलू उत्पादन के रूप में पूरा कर पाते हैं और जरूरत का शेष 70 प्रतिशत भाग आयात करना पड़ता है। इस आयात पर हम प्रतिवर्ष करीब 96,000 करोड़ रुपए के बराबर विदेशी मुद्रा खर्च करते हैं। वर्ष 2003–04 में देश में कच्चे तेल का 3.34 करोड़ टन उत्पादन हुआ, जो हमारी आवश्यकता का लगभग एक–तिहाई भाग था। इस समय देश में प्रतिवर्ष 10.2 करोड़ टन तेल की मांग है। अनुमान लगाया गया है कि यह मांग बढ़कर वर्ष 2007 तक 14.5 करोड़ टन एवं वर्ष 2012 तक 17.6 करोड़ टन हो जाएगी। जिस गति से देश में पेट्रोलियम पदार्थों का उपयोग बढ़ रहा है उस गति से देश के सभी तेल भण्डारों के अगले 40–50 वर्षों में पूरी तरह समाप्त हो जाने के भी अनुमान हैं। ऐसे में हमारे सामने अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने का केवल एक ही विकल्प बचेगा और वह होगा आयात। यह आयात खर्चे की दृष्टि से भयंकर स्वरूप का होगा, क्योंकि वर्तमान समय में कच्चे तेल की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कीमत 50 से 55 डालर प्रति बैरल के बीच है।

जैट्रोफा की उत्पादन विधि – जैट्रोफा का प्रजनन बीज एवं कलम दोनों से ही होता है। एक बार पौधा 2मि. × 2मि. (कतार × पौधा) की दूरी पर लगाने के बाद 10–15 वर्षों तक लाभ मिलता रहता है। 1 हेक्टेयर खेत के लिए 250 पौधे या 2 किग्रा. बीज पर्याप्त रहता है। वर्तमान में जैट्रोफा के महत्व और इसके उत्पादन के लिए आवश्यक परिस्थितियों के मद्देनजर आसानी से उपलब्ध बिल्कुल बेकार पड़ी कम से कम 6.25 लाख हेक्टेयर ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि उपलब्ध है। इसके अंतर्गत प्रयोग करके बड़ी मात्रा में बायो डीजल के उत्पादन की प्रबल संभावनाएं मौजूद हैं। रेलवे विभाग द्वारा इंडियन ऑयल की मदद से रेलवे की लगभग 500 हेक्टेयर भूमि में जैट्रोफा के पौधे लगाये जा रहे हैं।

जैट्रोफा बायो–डीजल की विशेषताएं – • इससे तैयार डीजल में सल्फर की मात्रा प्रति मिलियन 15 घटक कम पायी जाती है। डीजल में सल्फर की कम मात्रा डीजल की अच्छी क्वालिटी का संकेत देती है।

- इसके प्रयोग से वाहनों में धुएं का उत्सर्जन 25 से 50 प्रतिशत तक कम मात्रा में होता है जो इसकी अच्छी गुणवत्ता का प्रमाण है।
- इसके प्रयोग से वाहनों से निकलने वाले धुएं में बिना जले हुए सॉलिड कार्बन तत्व, हाइड्रोकार्बन्स एवं कार्बन मोनो आक्साइड (हानिकारक गैस) तथा अवशिष्ट (एसपीएम) अंश की मात्रा काफी कम पायी गई है।
- जैट्रोफा जनित ऑयल अर्थात् बायो–डीजल ज्वलनशील नहीं है अतः इसका भण्डारण एवं परिवहन भी आसान होता है।

- इसके धुएं में सल्फेट फ्रेक्शन पूरी तरह से नगण्य रहता है अतः यह काफी हद तक प्रदूषण रहित होता है। बायो डीजल द्वारा उत्सर्जित पदार्थ काफी कम मात्रा में ओजोन परत को नुकसान पहुंचाते हैं।
- बायो डीजल में उत्कृष्ट कोटि की चिकनाई होती है। यहां तक कि केवल 1 प्रतिशत बायो डीजल के प्रयोग से चिकनाई को 65 प्रतिशत तक सुधारा जा सकता है।
- जैट्रोफा से तैयार किए गए डीजल में उच्च सीटेन क्षमता (48–60 के मध्य) होती है।
- जैट्रोफा के उत्पादन के माध्यम से बंजर और अप्रयुक्त भूमि को प्रयोग में लाने और ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में रोजगार सृजन की महत्वपूर्ण संभावनाएं बन सकती हैं।
- इसके अधिकाधिक प्रयोग में आने से ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त ऊर्जा संरक्षण उपलब्ध कराया जा सकता है।
- इसके उत्पादन को अधिक से अधिक बढ़ावा देकर खनिज तेल के आयात में कमी लाना और बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा की बचत करना संभव हो सकता है।

इन सबके अतिरिक्त जैट्रोफा का अन्य कार्यों के लिए भी प्रयोग किया जाता है :–

- जैट्रोफा के पत्तों को कीटनाशकों के गुणों वाला पाया जाता है अतः इसके पत्तों से दीमक, मच्छरों तथा खटमलों आदि को नष्ट करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।
- इसमें कैंसर की दवा बनाने, जहरीले कीड़े जैसे बिच्छू, सर्प आदि के डंक से उपचार करने में भी अत्यधिक उपयोगी पाया गया है।
- जैट्रोफा से निकलने वाले अखाद्य तेल का उपयोग मुख्य रूप से साबुन बनाने में किया जाता है। इसमें ग्लिसरीन भी बनती है जिसका प्रयोग बड़ी मात्रा में सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में होने लगा है। इस प्रकार इसकी मांग साबुन, औषधि तथा सौन्दर्य प्रसाधन उपयोग में काफी अधिक है।
- इसके पत्तों, डालों तथा छाल से बहुत उपजाऊ कम्पोस्ट खाद तैयार की जा सकती है जिसमें उर्वरा शक्ति बढ़ाने के साथ–साथ रोग रोधी क्षमता भी होती है।
- जैट्रोफा के पत्ते एवं इसका तेल चर्म रोगों के उपचार में काफी उपयोगी होते हैं।

उक्त विशेषताओं के आधार पर जैट्रोफा निर्मित बायो डीजल निश्चित रूप से बहुत उपयोगी है क्योंकि जैट्रोफा के माध्यम से बायो डीजल उत्पादन को बढ़ावा देकर अनेक लाभ अर्जित किए जा सकते हैं। लेकिन इसमें एक खास कमी भी पायी गयी है कि उसके प्रयोग से वाहनों के इंजनों में 'गम' का निर्माण होने लगता है जो उनके जीवन के लिए हानिकारक होता है। हालांकि इसमें कमी लाने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा शोध कार्य किए जा रहे हैं, ताकि इस कमी को दूर किया जा सके।

प्रयास और रणनीति – जैट्रोफा पर अनुसंधान कार्य रेलवे लैबोरेट्री लखनऊ; सीएसआईआर; आईआईटी, दिल्ली; आईआईपी, देहरादून; पीएवी, लुधियाना आदि संस्थानों द्वारा किया जा रहा है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा राजकोट में शुद्ध जैव डीजल का परीक्षण उच्च शक्ति वाले गैर–आटो मोबाइल इंजन पर भी किया जा चुका है और इसके परिणाम भी काफी संतोषजनक बताए गए हैं। इन परीक्षणों से प्रभावित होकर हाल ही में राजस्थान की सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई–राजस्थान माइन्स एण्ड मिनरल कम्पनी द्वारा राजस्थान में जैट्रोफा आधारित बायो डीजल प्लांट लगाने हेतु तेजी से प्रयास शुरू किए गए हैं। कम्पनी द्वारा इस संबंध में भविष्य की रणनीति तय करने हेतु सेन्ट्रल साल्ट एण्ड मैरीन केमिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भावनगर (गुजरात) से परामर्श और विचार–विमर्श भी किया गया है। हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड द्वारा भी जैट्रोफा से विकसित किए गए जैव डीजल को अत्यन्त उपयोगी और उपयुक्त गुणवत्ता का बताया गया है। इसको बनाने हेतु एचपीसीएल ने 90 प्रतिशत जीवाश्म डीजल के साथ 10 प्रतिशत जैट्रोफा आधारित डीजल के साथ मिलकर बायो डीजल को निर्मित किया है जिसे मुम्बई में प्रयोग के तौर पर यहां की सार्वजनिक यातायात प्रणाली 'वेस्ट' की 20 बसों में सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया गया है। गुजरात के भावनगर स्थित साल्ट एण्ड मैरीन केमिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा भी जैट्रोफा से तैयार किए जाने वाले बायो डीजल का आटोमोबाइल रिसर्च एसोसिएशन पुणे, मर्सिडीज कार बनाने वाली कम्पनी डेमलर क्रिसलर तथा जर्मनी के होहेन हाइम यूनिवर्सिटी के तत्वावधान में सफल परीक्षण किया गया है। इसके परिणाम इन सभी अनुसंधानकर्ताओं द्वारा अत्यधिक उत्साहवर्धक बताये गए हैं। इन सभी सफलताओं से प्रेरित होकर अपने उत्कृष्ट वैज्ञानिक राष्ट्रपति महामहिम डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम द्वारा जैट्रोफा आधारित बायो डीजल को वर्ष 2005 के लिए विज्ञान और तकनीकी में पांच सर्वाधिक प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की सूची में स्थान दिया गया है।

इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन ने बायो डीजल का पूर्ण अध्ययन करने के लिए रेलवे के साथ एक समझौता किया है। इस समझौते के अनुरूप इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन गुजरात के सुंदर नगर में 70 हेक्टेयर भूमि पर जैट्रोफा की खेती शुरू की है। जैट्रोफा के एक लाख पौधे इस भूमि पर उगाए गए हैं। यह देश में अपने किस्म का पहला ऐसा प्रोजेक्ट है, जिसमें जैट्रोफा बायो डीजल के हर पहलू का अध्ययन किया जाएगा। इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन ने रेल इंजनों में इस डीजल का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। अभी हाल ही में दिल्ली कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग के बायो डीजल शोध ग्रुप ने एक ऐसा संयंत्र बनाया है जिससे करंजा व जैट्रोफा पौधों के बीजों से निकाले गए तेल से बायो डीजल तैयार किया जा सकेगा। जैट्रोफा पौधों के बीजों से निकाले गये तेल द्वारा चालित पहली कार को मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने हरी झंडी दिखाकर दिल्ली की

सड़कों के लिए रवाना किया। बायो डीजल तैयार करने के कार्य को अहमियत देते हुए सरकार ने योजना आयोग की सहमति के लिए एक राष्ट्रीय मिशन व विस्तृत परियोजना रिपोर्ट तैयार की है। पंचायती राज संस्थाएं भी बायो डीजल तैयार करने की प्रक्रिया में मदद कर रही हैं।

बायो डीजल : कुछ संकल्प – निःसंदेह सरकार द्वारा देश में बायो डीजल के उत्पादन को बढ़ावा देने हेतु अनेक स्तरों से विविध प्रयास किए जा रहे हैं फिर भी जैट्रोफा उत्पादन के महत्व को देखते हुए अधिक से अधिक बायो डीजल प्राप्त करने की दिशा में निम्नलिखित कदम मुख्य रूप से विचारणीय हैं:–

- जैट्रोफा का उत्पादन बढ़ाने के लिए इसकी व्यावसायिक खेती हेतु कृषि वि.वि., आईसीएआर संस्थानों एवं गैर–सरकारी संगठनों द्वारा तकनीकी जानकारी देना, अनुकूल भौगोलिक क्षेत्रों का चिहांकन, कृषकों को विशेष ऋण व्यवस्था, आर्थिक अनुदान, उन्नत किस्मों का विकास, प्रदर्शन केन्द्रों, अग्रिम पंक्ति प्रदर्शनों, विपणन सुविधाएं प्रदान करना आदि मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान देने की जरूरत है।
- डीजल व पेट्रोल पदार्थों की बढ़ती आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आज संसार के विभिन्न देशों में जैव ईंधन को अत्यधिक बढ़ावा दिया जा रहा है। वर्तमान में स्पेन में ऑलिव ऑयल, मलेशिया में पॉम ऑयल, फ्रांस में रेपसीड ऑयल आदि का डीजल में मिश्रण मिलाकर जैव डीजल बड़ी मात्रा में बनाया जा रहा है। हमें भी जैट्रोफा के अतिरिक्त इस तरह के अन्य उपयोगी वृक्षों और झाड़ियों की खोज करनी होगी जो हमारे यहां या तो बहुतायत में उपलब्ध हैं अथवा उन्हें विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में आसानी से उगाया जाना संभव हो सकता है और इनसे शीघ्र, सस्ते व सुविधाजनक तरीके से अधिक मात्रा में बायो डीजल बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहना अप्रत्याशित नहीं होगा कि 'बायो डीजल' भविष्य का ईंधन है। इस तथ्य को व्यावहारिक रूप में स्वीकारते हुए इसके अधिक से अधिक उत्पादन में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करते हुए बढ़ावा देना प्रत्येक देशवासी का मौलिक दायित्व होना चाहिए। अब समय आ गया है कि देश के विभिन्न भागों में लाखों हेक्टेयर में बेकार, बंजर, अनुपजाऊ तथा रेगिस्तानी भूमि के उपयोग में लाकर उसे आर्थिक दृष्टि से उपयोगी बनाने, लाखों बेरोजगार लोगों और विशेषकर कृषकों को एक लाभप्रद रोजगार प्रदान करने, डीजल की बेतहाशा बढ़ती मांग को पूरा कर अपने खनिज तेल के भंडारों को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखने, वर्षानुवर्ष खनिज तेल के आयात पर होने वाले विशाल खर्चे में कटौती कर विदेशी मुद्रा बचाने जैसे अनेक उद्देश्यों की पूर्ति में इसके योगदान की सत्यता को स्वीकार करते हुए हम सभी को इस दिशा में हर संभव प्रयास करने चाहिए, यही समय की मांग है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा के लिए कानून बनाने का प्रस्ताव

श्रम और रोजगार मंत्री श्री के. चंद्रशेखर राव ने कहा कि सरकार असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए एक सर्वनिहित कानून बनाने पर विचार कर रही है, जिससे न केवल मौजूदा प्रावधानों में सुधार होगा, बल्कि उनकी सामाजिक सुरक्षा संबंधी जरूरतें काफी हद तक पूरी की जा सकेंगी। मई दिवस के अवसर पर श्रमिकों को बधाई देते हुए श्री राव ने कहा कि सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि श्रमिक वर्ग को भी आर्थिक सुधारों का लाभ मिलें। उन्होंने इस बारे में सभी हितधारकों से सहयोग की अपेक्षा की। मई दिवस के उपलक्ष्य में जारी श्रम मंत्री के बधाई संदेश का मूल पाठ इस प्रकार है –

"अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक दिवस जिसे मई दिवस भी कहा जाता है, श्रमिक वर्ग की एकता का प्रतीक है। मैं देश की श्रमिक वर्ग को इस अवसर पर अपनी हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं। श्रमिकों और उनके प्रतिनिधियों, कानून निर्माताओं और सरकार के लिए यह उचित अवसर है कि वे श्रमिकों को श्रम सुरक्षा तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के क्षेत्र में उपलब्धियों पर विचार करें और श्रमिकों की हालत में सुधार के जरिए तलाशें।

आजादी के बाद सरकार ने श्रमिक वर्ग की कार्य स्थिति में सुधार और कल्याण के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। लेकिन अभी भी बहुत कुछ किया जाना बाकी है, विशेषकर असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए क्योंकि देश में श्रमिकों का एक बहुत बड़ा वर्ग इस क्षेत्र में कार्यरत है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए हालांकि कुछ महत्वपूर्ण कानून बनाए गए हैं, परंतु ये कानून इस क्षेत्र के हर वर्ग की जरूरत पूरी नहीं कर पाए हैं। इसलिए सरकार असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए एक सर्वनिहित सुरक्षा कानून बनाने पर विचार कर रही है। सरकार मौजूदा प्रावधानों में सुधार के लिए भी प्रयासरत है। इससे सामाजिक सुरक्षा संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त करने में काफी मदद मिलेगी।

दुनिया में सबसे ज्यादा श्रम शक्ति भारत में है और वह भी मुख्यतया असंगठित क्षेत्र में। इस क्षेत्र में श्रम सुरक्षा की कोई खास व्यवस्था नहीं है। इन श्रमिकों की परेशानियों को दूर करने के लिए सं.प्र.ग. सरकार ने समन्वित आवास योजना जैसी स्कीमें लागू की हैं और हाल ही में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम–2005 लागू किया है। यह ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले लोगों को जीवन–यापन सुरक्षा प्रदान करेगा।

हमें यह भी सुनिश्चित करना है कि श्रमिक वर्ग पर उदारीकरण और वैश्विकरण का कोई दुष्प्रभाव न पड़े। उन्हें भी इन सुधारों का लाभ मिले। श्रम कल्याण और आर्थिक सुधारों के दोहरे लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सभी हितधारकों और संगठनों से सहयोग की अपेक्षा है। सरकार इस अवसर पर त्रिपक्षीय मूल्यों और संस्कृति में अपने विश्वास को फिर से दोहराती हैं।

सरकार आगामी वर्षों में श्रमिकों के कल्याण, शिक्षा कार्यक्रम, कौशल विकास और उत्थान तथा अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुसार व्यावसायिक प्रशिक्षण को और ज्यादा प्रासंगिक बनाने पर ध्यान देगी। सरकार 500 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों (आईटीआई) को उत्कृष्ट केंद्रों के रूप में विकसित कर रही है। इनमें से 100 आईटीआई के लिए धन की व्यवस्था देश में ही की जाएगी और 400 आईटीआई विश्व बैंक की आर्थिक सहायता से विकसित किए जाएंगे।

ऊर्जा स्वावलंबन की ओर

दिनेश मणि

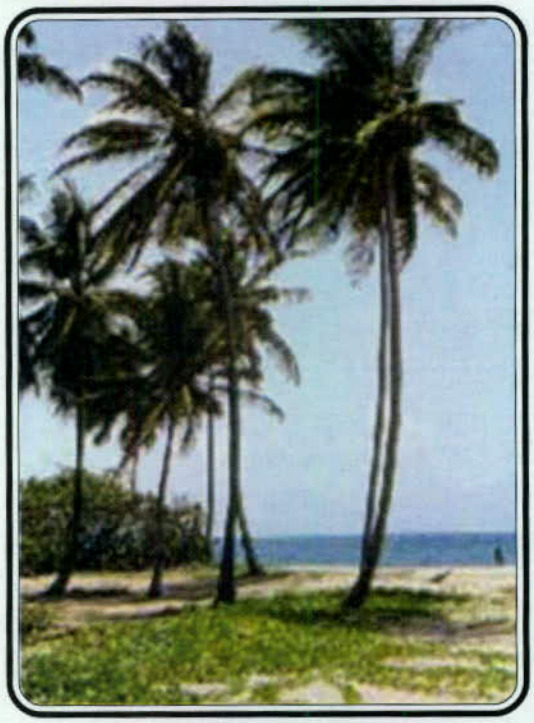

ऊर्जा किसी भी राष्ट्र के विकसित, अर्द्धविकसित, विकासशील या अल्पविकसित होने का आधार है। इसके आधार पर ही किसी राष्ट्र की समृद्धि एवं प्रगति का आकलन किया जाता है। पर्याप्त ऊर्जा के बिना किसी राष्ट्र का औद्योगिक विकास संभव नहीं है। चाहे कृषि हो या उद्योग, संचार हो या परिवहन, विद्युत उत्पादन हो या घरेलू कार्य, ऊर्जा की आवश्यकता हर कदम पर पड़ती है। भूमि पूंजी एवं श्रम के बाद ऊर्जा को ही विकास के परिप्रेक्ष्य में एक परिहार्य साधन के रूप में जाना जाता है। भारत में प्रति व्यक्ति उपयोग होने वाली ऊर्जा की खपत मात्र 243 ग्राम तेल तुल्य है जो विश्व औसत का मात्र 1.6 प्रतिशत है जबकि अमेरिका व जापान में यह क्रमशः 3 तथा 7 प्रतिशत है।

हमारे देश में विद्युत के रूप में उपयोग की जाने वाली कुल ऊर्जा उपयोग का 60 प्रतिशत तापीय परियोजनाओं से, 25 प्रतिशत जल विद्युत परियोजनाओं से, 20 प्रतिशत परमाणु बिजली घरों से 4 प्रतिशत डीजल और गैस आधारित बिजलीघरों से तथा लगभग 1 प्रतिशत सौर, पवन, तरंग, बायोगैस व लघुपन बिजलीघरों से प्राप्त होता है। इस ऊर्जा उपयोग का 60 प्रतिशत व्यावसायिक स्रोतों जैसे– कोयला, तेल, गैस, बिजली, जल विद्युत, नाभिकीय ऊर्जा आदि से तथा शेष 40 प्रतिशत गैर–व्यासायिक स्रोतों जैसे– अग्निकाष्ठ, कृषि अपशिष्ट तथा पशुओं से प्राप्त अवशिष्ट पदार्थों आदि से प्राप्त होता है। भारत में अभी तक लगभग 9वीं पंचवर्षीय योजना में 40245 मेगावाट विद्युत उत्पादन का लक्ष्य रखा गया था लेकिन मात्र 24309 मेगावाट उत्पादन 41000 मेगावाट उत्पादन का लक्ष्य है। 10वीं पंचवर्षीय योजना में बिजली क्षेत्र के विकास के लिए 1,78,242 करोड़ रुपए निर्धारित किए गए हैं।

59वें स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर राष्ट्र के नाम लीक से हटकर दिए अपने उद्‌बोधन में महामहिम राष्ट्रपति ने "ऊर्जा स्वावलंबन" को राष्ट्र की पहली तथा प्रमुख प्राथमिकता बताते हुए कहा कि ऊर्जा सुरक्षा के माध्यम से ऊर्जा स्वतंत्रता हासिल करना निश्चित रूप से संभव है और राष्ट्र में इसे प्राप्त करने की क्षमता है। उन्होंने कहा कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 25 वर्षीय राष्ट्रीय मिशन को सूत्रबद्ध करने के लिए राशि उपलब्ध करवाई जानी चाहिए और सार्वजनिक निजी साझेदारी तथा राष्ट्र निर्माण की एक नयी ऊर्जा के संकल्प के साथ इसका नेतृत्व तुरंत तीस वर्षों से कम आयु की युवा पीढ़ी को सौंप देना चाहिए।

राष्ट्रपति ने इस बार अपना पूरा उद्‌बोधन ऊर्जा के क्षेत्र में स्वावलंबन पर केंद्रित किया। ऊर्जा सुरक्षा को एक अहम और महत्वपूर्ण जरूरत बताते हुए उन्होंने नाभिकीय ऊर्जा को अंतरराष्ट्रीय सहयोग से भी बढ़ाए जाने की जरूरत पर बल दिया। उन्होंने कहा कि इस वक्त तेल और प्राकृतिक गैस का आयात मूल्य 1,20,000 करोड़ रुपये है। तेल और गैस की कीमतें बढ़ रही हैं और एक बैरल तेल की कीमत एक वर्ष में दुगनी हो गई हैं। उन्होंने कहा कि इस समस्या का निदान करना होगा। महामहिम राष्ट्रपति ने कहा कि देश तेल की अपनी जरूरत के केवल 25 प्रतिशत हिस्से का ही उत्पादन करता है। राष्ट्र को 2020 तक विश्वव्यापी तेल एवं गैस अन्वेषण और उत्पादन में वृद्धि करके व्यापक ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त करने की जरूरत पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि भारत को 2030 तक सौर विद्युत और अक्षय ऊर्जा के अन्य स्रोतों के जरिये जल और विशाल स्तर पर जेट्रोफा जैसे पौधे के माध्यम से जैव ईंधन उत्पादन बढ़ाकर ऊर्जा स्वावलंबन प्राप्त करना चाहिए।

ऊर्जा से संबंधित ऐतिहासिकी पर प्रकाश डालने पर पता चलता है कि सभ्यता के प्रारंभ से लेकर पिछली कुछ शताब्दियों तक मानव मुख्यतः ऊर्जा के नवीकरणीय स्रोतों पर ही निर्भर था। पाषाण युग के आदि मानव ने पत्थर को पत्थर से रगड़कर ही आग के रूप में प्रारंभिक ऊर्जा उत्पन्न की थी। आग के आविष्कार के बाद पवन और जल ऊर्जा का दोहन आदि मानव की विकास यात्रा के कुछ मील के पत्थर बने। इन ऊर्जा स्रोतों से उसने मुख्यतः पनचक्कियों को चलाकर उनसे अनाज पीसने या पानी खींचने का काम लिया। सूखी पत्तियों, कृषि अपशिष्टों आदि जैव पदार्थों को जलाकर भी मानव ने ऊर्जा प्राप्त की। पाषाण युग से लेकर ताम्रयुग, लौह युग एवं आधुनिक युग तक आते–आते नए–नए उन्नत ऊर्जा स्रोतों की खोज मानव द्वारा हुई।

राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक विकास के लिए ऊर्जा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सूचकांक है। उद्योगीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप ऊर्जा के उपलब्ध पारंपरिक स्रोतों पर बड़ा दबाव पड़ा है। साथ–साथ बढ़ते शहरीकरण के कारण लोगों के जीवन स्तर में भी तेजी से सुधार हुआ है। उनके लिए आवश्यक साधन जिनमें यातायात के साधन भी शामिल हैं, तथा नई–नई उपभोक्ता वस्तुएं जुटाने के लिए भी ऊर्जा की खपत में लगातार वृद्धि होती रही है। इसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में "ऊर्जा संकट" की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

ऊर्जा की मांग मुख्यतः तीन कारकों पर निर्भर करती है– आर्थिक वृद्धि औद्योगीकरण की गति तथा ऊर्जा–नीति। इस शताब्दी के मध्य तक कोयला ऊर्जा का प्रमुख साधन रहा है, जबकि पेट्रोलियम तेल का उपयोग इसकी प्रथम खोज के पचास वर्ष बाद तक भी सिर्फ रोशनी और स्नेहक तेल के लिए सीमित रहा। कालांतर में पेट्रोलियम के बड़े स्रोत उपलब्ध होने पर इसका उपयोग पारंपरिक ऊर्जा साधनों की जगह विभिन्न क्षेत्रों में विस्तृत रूप से होने लगा और इस तरह एक "द्रवईंधन क्रांति" आई। तेल के साथ ही प्राकृतिक गैस विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी होने के कारण ईंधन और कच्चा माल के उत्तम स्रोत के रूप में उभरकर सामने आई।

किसी भी देश में कुल औद्योगिक और घरेलू ऊर्जा की आवश्यकता का अनुमान देश में उत्पादित ऊर्जा, आयातित ऊर्जा, जनसंख्या और उपयोग की क्षमता पर निर्भर है। इस अनुमान में प्रत्याशित या अप्रत्याशित अंतर तीन मुख्य कारणों से होते हैं– राजनीतिक कारणों (युद्ध संकुचित राष्ट्रीय नीतियों इत्यादि) से ऊर्जा की अतिरिक्त खपत या उत्पादन में गिरावट (जैसे– मध्य एशिया में युद्ध के कारण विश्वव्यापी ऊर्जा संकट), ऊर्जा संबंधी तकनीक में परिवर्तन के कारण एक ईंधन की जगह दूसरे का चलन तथा आर्थिक उथल–पुथल व मूल्यों में वृद्धि के कारण ऊर्जा प्रणाली में परिवर्तन। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ऊर्जा प्रणाली परिवर्तनीय है और इसमें नए स्वरूप स्वीकार किए जाते हैं जिनसे उद्योग और जनसाधारण को समुचित मात्रा में न्यूनतम मूल्य पर वांछित ईंधन चुनाव की अधिकतम स्वतंत्रता देते हुए मिल सके।

जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल काफी समय से हो रहा है। लेकिन इनके सीमित भण्डारों तथा ऊर्जा के लगातार महंगे होते चले जाने से ऊर्जा संरक्षण की आज हमें और भी अधिक आवश्यकता है। तेल के बढ़ते मूल्यों के कारण विदेशी मुद्रा कोष पर भी काफी अतिरिक्त भार पड़ा है। विशेषज्ञों का अनुमान के अनुसार नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक ऊर्जा के आयात पर हमारा कुल राष्ट्रीय व्यय 20 अरब अमेरिकी डालर के लगभग होने की संभावना व्यक्त की गई थी। इसको ध्यान में रखते हुए ऊर्जा की बचत अनिवार्य है जो पर्यावरण के हित में भी है। नवीनीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के विकास के कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। इन स्रोतों से ऊर्जा के दोहन के लिए नित नई प्रौद्योगिकियों का विकास किया जा रहा है। किन्तु इसके लिए धन के अलावा समय की भी आवश्यकता है। अतः जब तक ऊर्जा के वैकल्पिक संसाधन उपलब्ध नहीं हो जाते, तब तक ऊर्जा के परंपरागत और अनवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों को ही सावधानीपूर्वक एवं मितव्ययता के साथ हमें उपयोग करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक समय तक उनसे ऊर्जा दोहन किया जा सके।

(लेखक 'विज्ञान' पत्रिका के पूर्व संपादक हैं)

पिछड़े क्षेत्रों के लिए 3 महीने के अंदर आदर्श ग्राम संसाधन केंद्र स्थापित किया जाएगा

केंद्रीय ग्रामीण विकास मंत्री डॉ. रघुवंश प्रसाद सिंह ने कहा है कि 3 महीनों के अंदर पिछड़े क्षेत्रों के लिए एक आदर्श ग्राम संसाधन केंद्र स्थापित कर दिया जाएगा। उन्होंने आज यहां ग्रामीण प्रौद्योगिकी तथा विकास और कपार्ट की भावी भूमिका के बारे में आयोजित एक राष्ट्रीय विचार–विमर्श सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए यह जानकारी दी। यह केंद्र अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी द्वारा संचालित ग्रामीण संसाधन केंद्र (वीआरसी) का एक हिस्सा होगा। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा यह प्रौद्योगिकी विकसित की जा रही है।

डॉ. रघुवंश प्रसाद सिंह ने वैज्ञानिकों से आहवान किया कि वे ग्रामीण किसानों के फायदे के लिए कौशल विकास और आमदनी बढ़ाने के वास्ते प्रौद्योगिकी विकसित करें। किसानों को उत्पादन बढ़ाने के लिए नई प्रौद्योगिकियां उपलब्ध कराई जानी चाहिए और ये प्रौद्योगिकियां ऐसी होनी चाहिए जो अलग–अलग कृषि–जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हों। उन्होंने कहा कि कपार्ट को भी ऐसी विशेष नीतियां विकसित करनी चाहिए जिनके जरिए किसानों को नवीनतम प्रौद्योगिकियों के फायदे मिल सकें और गरीब किसानों के जीवन स्तर में सुधार हो सके। श्री सिंह ने कहा कि कपार्ट को विकास के अपने नए मॉडल का प्रचार भी करना चाहिए। इस मॉडल से ग्रामीण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का ही विकास नहीं होगा, बल्कि अर्थव्यवस्था में विकास के सिलसिले को मझौले तथा स्वैच्छिक संस्थानों के जरिए लम्बे समय तक बनाए भी रखा जा सकेगा।

इसरो के उपग्रह संचार कार्यक्रम के द्वारा कार्यान्वित किए जा रहे ग्रामीण संसाधन केंद्र कार्यक्रम के द्वारा जमीन के इस्तेमाल, परती भूमि का मानचित्र तैयार करने और वनों के विकास आदि के बारे में आंकड़े एकत्र करने के लिए 85 केंद्र स्थापित किए जा रहे हैं।

कार्यक्रम में टेली–स्वास्थ्य, टेली–शिक्षा और आपातकालीन संचार जैसे क्षेत्रों में ग्रामीण इलाकों को विकास के फायदे पहुंचाने पर विशेष जोर दिया गया है। यह कार्यक्रम लगभग डेढ़ साल पहले शुरू किया गया था और भविष्य में इस कार्यक्रम के तहत 300 केंद्र स्थापित किए जाएंगे।

वैकल्पिक ईंधन : जैव डीजल

कृष्ण प्रकाश त्रिपाठी

स्वचालित वाहनों के लिए प्रयुक्त प्राकृतिक ईंधन के स्रोतों का धीरे–धीरे क्षय हो रहा है। इस कारण पेट्रोलियम उत्पादों के संरक्षण और इनकी खरीद में खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा की बचत के लिए वैकल्पिक ईंधनों की खोज के बारे में भूमंडलीय स्तर पर अनुसंधान जारी हैं। इस संदर्भ में जैव डीजल और जैव ईंधन की अवधारणाएं बहुचर्चित हैं। जैव डीजल पौधों के कुछ भागों से निकाले गये रसायनों से और इनमें पेट्रोईंधन मिलाकर तैयार किया जाता है जबकि जैव ईंधन के रूप में एथनॉल आदि विशुद्ध वनस्पतिक रसायनों का ही उपयोग होता है। इन दोनों के अतिरिक्त पौधों के कुछ भागों से प्राप्त तेल (एस.वी.ओ.) को बिना किसी मिश्रण के सीधे ही ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

डीजल इंजन के आविष्कारक रुडॉल्फ डीजल ने 1900 में वनस्पति तेल से डीजल इंजन चलाने का सफल प्रयोग किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले ही स्पष्ट हो गया था कि डीजल इंजन अन्य प्रकार के ईंधन तेलों से भी चल सकता है। उस समय डीजल सस्ता होने के कारण वैकल्पिक उपायों पर ध्यान नहीं दिया गया।

स्वचालित वाहनों में पेट्रोलियम उत्पादों के दहन से निकले रसायन पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। जैव डीजल में पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले रसायन अपेक्षाकृत कम मात्रा में पाये जाते हैं। इसका धुँआ कम काला और फेफड़ों व हृदय के लिए कम हानिकर होता है। पेट्रोडीजल की तुलना में जैव डीजल से हाइड्रोकार्बन का उत्सर्जन 50 प्रतिशत तथा कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन 70 प्रतिशत कम हो जाता है। इसके उपयोग से अम्लीय वर्षा कराने वाले सल्फर ऑक्साइड और सल्फेट भी लगभग नगण्य मात्रा में उत्सर्जित होते हैं। इस प्रकार जैव डीजल पर्यावरण को स्वच्छ रखने और भूमंडलीय गर्मी में वृद्धि को रोकने में सहायक हैं।

जैव डीजल वैकल्पिक ईंधन के रूप में सर्वाधिक परीक्षित वस्तु है। यह पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए पेट्रो उत्पादों की तुलना में बेहतर है। इसे पारम्परिक डीजल इंजन में बिना कोई परिवर्तन किये प्रयोग किया जा सकता है, कुछ इंजनों में थोड़ा परिवर्तन करना पड़ता है। इसका उपयोग स्वचालित वाहन और विद्युत जनरेटर चलाने में किया जा सकता है।

जैव डीजल किसी भी वसा अथवा वनस्पति तेल से बनाया जा सकता है। अब तक ऐसे 20 पौधे–वृक्षों की पहचान की गई है जिनसे जैव डीजल प्राप्त किया जा सकता है। सन फ्लॉवर, रेपसीड, कॉस्टर, फ्लैक्स, पाम, कोकोनट, सोयाबीन, जट्रोफा, करंज, महुआ आदि के तेल को ट्रांसएस्टरीफिकेशन नामक रासायनिक प्रक्रिया द्वारा डीजल में परिवर्तित किया जा सकता है। जैव डीजल में पेट्रोलियम उत्पादों की मिलावट बिल्कुल नहीं होती है लेकिन इसे पेट्रोलियम के साथ किसी भी तरह मिलाकर जैव डीजल मिश्रण बनाया जा सकता है।

जैव डीजल उत्पादन में सबसे पहले वनस्पति तेल को 55 अंश सेंटिग्रेड तक गर्म किया जाता है। फिर इसमें मेथनॉल और सोडियम हाइड्रॉक्साइड का मिश्रण मेथॉक्साइड मिलाया जाता है। लगभग 2 घंटे तक इसे घोटने के बाद अलग–अलग घनत्व के दो द्रव प्राप्त होते हैं। कम घनत्व वाला द्रव जैव डीजल होता है और अधिक घनत्व वाला द्रव ग्लिसरॉल होता है। ग्लिसरॉल का उपयोग साबुन तथा सौंदर्य प्रसाधन निर्माण में होता है। बीजों से तेल निकालने के बाद बची ठोस खली का प्रयोग खाद के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार जैव डीजल उत्पादन में प्राप्त अनेक प्रत्येक वस्तु का उपयोग हो जाता है और अनेक प्रकार से आय होती है।

जैव डीजल की उपयोगिता धीरे–धीरे समस्त भूमंडल में बढ़ रही है। अनेक देशों में इसका प्रचलन सफलतापूर्वक हो रहा है। इस उद्योग के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानक 1994 में निश्चित कर दिये गये हैं। इनकी सूचना इंटरनेट की वेबसाइट डब्ल्यू. डब्ल्यू.डब्ल्यू.डॉट.एएसटीएमडॉट.ओआरजी से प्राप्त की जा सकती है।

अपने देश में अनेक राज्यों की सरकार जैव डीजल के उत्पादन के अभियान में जुटी है। इनमें छत्तीसगढ़ अग्रणी है। इस राज्य में जैव डीजल के अनुसंधान–उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए छत्तीसगढ़ जैव डीजल विकास प्राधिकरण की स्थापना की गयी है। इस प्राधिकरण ने विगत वर्ष 2005 में प्रदेश में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रतनजोत (जट्रोफा) के बीजों से जैव डीजल उत्पादन का संयंत्र माना हवाई अड्डा मार्ग पर स्थित ऊर्जा पार्क के समीप स्थापित किया है। रतनजोत से प्राप्त जैव डीजल से वाहन चलाने के सफल प्रयोग हो चुके हैं। यह प्राधिकरण उद्यमियों को संयंत्र लगाने के लिए आर्थिक सहायता दे रहा है।

आन्ध्रप्रदेश में नलगोंडा में व्यावसायिक जैव डीजल संयंत्र ने इस वर्ष जनवरी से उत्पादन आरंभ कर दिया है केरल के ग्रामीण क्षेत्र में पोगैंमिया पिनाटा के बीजों से निकले तेल से जेनरेटर चलाये जाने का प्रदर्शन हो चुका है। इसका मूल्य पेट्रोडीजल से बहुत कम है और तेल निकलने के बाद बची खली को खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

अनुमान के अनुसार जैव डीजल उत्पादन और उपयोग को अच्छी सफलता मिलने पर लगभग 8 वर्ष बाद भारत सरकार अपने पेट्रो खर्च में 20 हजार करोड़ रुपयों की वार्षिक बचत कर सकेगी।

पेट्रोलियम उत्पादों के प्रयोग से उत्पन्न प्रदूषण की रोकथाम इनके आयात से विदेशी मुद्रा के खर्च में बचत और वाहन ईंधन क्षेत्र में देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए राष्ट्रीय जैव डीजल नीति–निर्माण के बारे में व्यापक कार्य जारी है। इसके लिए अन्य उपायों के साथ–साथ जैव डीजल उत्पादन में सहायक पौधों की खेती को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

चमक उठा भावगढ़ का भाग्य

किशन रतनानी

भावगढ़ का भाग्य चमक उठा है। अंधेरा इस गांव से विदा हो गया है। गांव के सभी घरों में बिजली पहुंच गई है। बबूल से बनी यह बिजली भावगढ़ में नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन लिमिटेड द्वारा अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के तहत 30 लाख रुपए की लागत से बनाये गये 10 किलोवाट की क्षमता वाले राजस्थान के पहले बायोमास बिजली उत्पादन संयंत्र में बन रही है जिससे गांव के अधिकांश घरों में रोशनी हो गई है। खास बात यह है कि इस संयंत्र का संचालन गांव की समिति ही करेगी। इसे विलेज एनर्जी समिति का नाम दिया गया है। तथा एनटीपीसी ने पार्वती ऊर्जा उत्पादन सहकारी समिति लिमिटेड के रूप में इसका बकायदा पंजीकरण करवा लिया है।

कोटा से लगभग 140 किलोमीटर दूर बारां जिले की मांगरोल तहसील की जाडेला ग्राम पंचायत का गांव भावगढ़, बारां मांगरोल बंबोरीकलां मार्ग पर बंबोरीकला से लगभग 6 किलोमीटर दूर मध्य प्रदेश की सीमा पर बसा एक दूर–दराज का गांव है। एनटीपीसी ने भावगढ़ को इस संयंत्र के लिए चुना इसे लेकर सभी गांव वाले बहुत खुश है।

संयंत्र स्थल पर मौजूद एनटीपीसी के उप महाप्रबंधक तथा संयंत्र के प्रभारी कृष्ण लाल ने बताया कि भारत सरकार की कारपोरेट सोशल रेसपोंसिबिलिटी योजना के तहत एनटीपीसी को ऐसे 17 संयंत्र लगाने का दायित्व मिला है। जिनमें से यह पहला है। इस संयंत्र पर 30.03 लाख खर्च हुए है जिसमें से 90 प्रतिशत राशि की सहायता केंद्र सरकार से तथा 10 प्रतिशत राशि की सहायता राज्य सरकार से प्राप्त हुई है।

एनटीपीसी ने इस संयंत्र की स्थापना टेरी (द एनर्जी इन्स्ट्टीयूशन के तकनीकी सहयोग से) की है। इस संयंत्र को चलाने के लिए जिस बायोमास की जरूरत होती है इस गांव के आस–पास बबूल की असंख्य झाड़ियों व पेड़ों के रूप में इतनी मात्रा में मौजूद है कि अगले पांच साल तक यह संयंत्र चल सकता है। उन्होंने कहा कि बबूल की यह खासियत है कि यह जितना कटता है उससे अधिक बढ़ता है। बस इसे काटकर टुकड़े कर संयंत्र की एक बड़ी चिमनी में डालने का खर्चा करना पड़ेगा जो लगभग एक रुपये प्रति किलो होता है।

भावगढ़ बिजली संयंत्र में बायोमास (सरसों, ज्वार, तिल्ली की तूडी व विलायती तथा देशी बबूल की लकड़ी तथा अन्य वेस्ट मेटेरियल) को जलाया जाएगा। इसके जलने से नाइट्रोजन, हाईड्रोजन, मीथेन कार्बन मोनोऑक्साइड तथा कार्बन डाईआक्साईड गैस बनेगी जो हीट एक्सचेंजर में 500 से 600 डिग्री सेंटीग्रेड पर रहेगी। यहां पर बायलर से इन्हें ठंडा करके 300 डिग्री सेंटीग्रेड पर फायर बॉक्स में भेजा जाएगा। जहां गैस की गुणवत्ता बढ़ेगी। टू टायर फिल्टर में बोरी के टाट डालकर गैस को जलरहित बनाकर मिक्स फिल्टर में भेजा जाएगा। जिससे दस किलोवाट क्षमता का टैक्टर जैसा इंजन चलेगा और बिजली पैदा होगी। यहां से बिजली केवल के जरिए इस गांव को रोशन करेगी।

इसे चलाने के लिए एनटीपीसी ने टेरी के माध्यम से गांव के दो नवयुवकों रामहेत और रामप्रसाद को बकायदा दिल्ली में एक सप्ताह का प्रशिक्षण दिया है। तथा एक माह का प्रशिक्षण भावगढ़ संयंत्र स्थल पर दे रहे हैं संयंत्र के लिये सर्वे आदि का कार्य महीने पहले शुरू हुआ था जबकि निर्माण कार्य 25 नवंबर, 2005 से प्रारंभ हुआ तथा 18 मार्च, 2006 को यह बनकर तैयार हो गया।

इस संयंत्र की सबसे बड़ी खासयित है गांव की सामुदायिक सहभागिता। इस संयंत्र को चलाने के लिए जिस विलेज एनर्जी समिति को बनाया गया है। उसने संचालन के कुछ नियम बनाये हैं। मसलन कनेक्शन लेने वाले प्रत्येक परिवार से पांच सौ रुपये लिए गए है तथा हर एक घर को 40–40 वॉट के अधिकतम दो बल्ब जलाने की अनुमति दी गई है इसके लिए समिति को 25 रुपये प्रति बल्ब के हिसाब से शुल्क देना होगा। उपयोग के कुछ नियम भी बनाये गये है। समिति को जो आय होगी उससे इस संयंत्र को चलाने वाले दो युवको को नौ सौ–नौ सौ रुपये का भुगतान समिति करेगी। सारा धन समिति खाते में जमा होगा। एक और अच्छी व्यवस्था इस संयंत्र के रख–रखाव की जरूरत के आवश्यक सामान इस प्रकार संयंत्र स्थल पर रखे गये हैं कि आगामी पांच वर्षों तक उसका इस्तेमाल हो सके। इसके कारण गांव के लोगों के जीवन में नई आशा का संचार हुआ है।

जिस गांव में लोग सूरज ढलते ही सो जाया करते थे, उस गांव में बिजली आने से लोग अब देर रात तक अपने कामों को पूरा कर सकते हैं। प्राथमिक विद्यालय भावगढ़ के शिक्षक रघुवीर सिंह हाड़ा ने बताया कि उनके अधिकांश लोग रात 8 बजे अंधेरा होने पर सो जाते थे तथा गांव सुनसान हो जाया करता था, परंतु बिजली आने से अब गांव में देर रात तक बिजली के प्रकाश में चौपाल पर बैठकर बातचीत की जा सकती है तथा बचचे टी.वी. इत्यादि का आनंद तथा पढ़ाई जैसे कार्य भी कर सकते है। सड़कें भी प्रकाशवान हो गई हैं। पंचायत समिति सदस्य सोभाग मल मीणा ने बताया कि गांव में पहली बार बिजली आने से चारों ओर रोशनी ही रोशन हो गई है। सब खुश है। पार्वती ऊर्जा उत्पादन सहकारी समिति के अध्यक्ष बुजुर्ग रामगोपाल मीना ने बताया कि उन्होंने पूरा जीवन अंधेरे में बिताया है। अब बिजली आने से गांव का विकास भी होगा। गांव में 18 मार्च से प्रायोगिक तौर पर बिजली चालू हो गई थी। इस दौरान किसी से कोई चार्ज नहीं लिया गया। 12 अप्रैल को संयंत्र को लोकार्पण होने के बाद से लोगों से इसका चार्ज लिया जाने लगेगा। आज के आधुनिक विकास के दौर में भावगढ़ गांव की एक हजार की आबादी में करीब एक दर्जन लोगों के पास मोबाइल है। गांव में बिजली नहीं होने से करीब छह किलोमीटर दूर बंबोरीकलां गांव जाना पड़ता था। गांव में बायोमास संयंत्र से बिजली उत्पादन शुरू होने से अब लोगों के मोबाइल गांव में चार्ज हो जाएंगे। मोबाइल चार्ज करने के लिए संयंत्र स्थल पर ही छह पाइंट लगाए गए हैं जहां लोगों के मोबाइल निशुल्क चार्ज होंगे। गांव में बायोमास संयंत्र लगने से स्ट्रीट लाइट चालू कर दी गई है।

ग्रामीण जन समुदाय की सहभागिता तथा कारपोरेशन का सामाजिक दायित्व दोनों मिलकर एक गांव को विकास की दिशा में कितना आगे बढ़ा सकते हैं इसकी मिसाल है, भावगढ़, जहां आजादी के बाद पहली बार वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के जरिए घर–घर में बिजली पहुंचाई गई है।

(लेखक पत्र सूचना कार्यालय, कोटा में सहायक सूचना अधिकारी हैं)

The RAU'S IAS experience...

...incisive, intensive & innovative.

Learn from the Best. Invest in yourself.

THE VISION

Rau's IAS Study Circle was established as a top ranking institute nearly 50 years ago, solely with the aim of helping serious students achieve success in Civil Services Exam by providing the highest quality coaching. The method, content & teaching standards established by the Study Circle have become synonymous with success in the minds of civil service students.

THE PERFORMANCE

Our 2005 Exam Results: Nine positions secured by our students in first 20 and 49 in first 100 with overall 203 total selections. As regards the past achievements, Study Circle has contributed nearly one-third of the total selections done for Civil Services by UPSC since 1953.

It is a well known fact that Rau's is the most trusted and recommended name all over the country for IAS, PCS & Judicial Services Coaching.

New batches for 2007 Exam, start from 2nd June, 2006

Admission Open, Apply Now.

Contact personally or write for prospectus with a DD/MO for Rs.50/- favouring Rau's IAS Study Circle.

THE PROGRAMMES

Civil Services/PCS Exam - 2007

- Personal Guidance (English Medium) is available for -
  General Studies/ Essay, History, Sociology, Public Administration, Geography, Psychology, Law & Commerce.
- पर्सनल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
  सामान्य अध्ययन / निबंध, इतिहास, समाजशास्त्र, लोक प्रशासन एवं भूगोल में उपलब्ध।
- Postal Guidance in English Medium available for - **General Studies, History, Sociology, Public Administration and Geography.**
- पोस्टल गाइडेंस (हिन्दी माध्यम) -
  केवल सामान्य अध्ययन एवं भारतीय इतिहास में उपलब्ध।
- Hostel facility arranged.

RAU'S IAS STUDY CIRCLE

309, Kanchanjunga Bldg., 18, Barakhamba Road, Connaught Place, New Delhi-110001. Phone : 23318135-36, 23738906-07, 55391202, 39448880-81, Fax: 23317153,
Visit : www.rauias.com

The Original Rau's / Rao's - Since 1953

KH-06/06/01

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)-05/3164/2006-08
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)-55/2006-08

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2006-08
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2006-08
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीणा जैन, निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : संपादक : स्नेह राय